गुरुत्तं

भाग–V

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के 31वें दीक्षा दिवस के अवसर पर प्रकाशित

कृति : गुरुत्तं भाग-5

मंगलाशीष : श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान : निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, जम्बूस्वामी तपोस्थली बौलखेड़ा, कामॉ, भरतपुर (राजस्थान)

संपर्क सूत्र : 9867557668, 9971548889

संस्करण : द्वितीय सन् 2020

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : स्वाध्याय

प्रकाशन : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

मुद्रक : ईस्टर्न प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली-110028
दूरभाषः 011-47705544 ई-मेलः info@easternpress.in

पुण्यार्जक

✳ **श्रीमती सुनीता जैन ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन, कालका जी, दिल्ली**

✳ **श्रीमती अनीता जैन, कालका जी, दिल्ली**

✳ **श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री विमल कुमार जैन, मेरठ**

पुरोवाक्

आत्मानं स्नापयेन्नित्यं, ज्ञानवारिणा चारुणा।
येन निर्मलतां याति, जीवो जन्मान्तरेष्वपि।।314।।

–सारसमुच्चय

आत्मा को नित्य पवित्र ज्ञान रूपी जल से स्नान कराओ, जिससे यह जीव जन्म–जन्मान्तर के पापों से निर्मल हो जाता है।

जिस प्रकार पत्थर में मूर्ति अत्यन्त छिपी रहती है कोई कलाकार हथौड़ी और छैनी से पत्थर का कुछ अंश हटाता है तब मूर्ति प्रगट हो जाती है। इसी प्रकार हमारे भीतर भी वीतराग भाव की सौम्य प्रतिमा रूप चेतना छिपी है, उस पर से कुछ विकृतियों के अंश हटाए जाएँ तो परम शान्त मुद्रा प्रगट होगी। पत्थर को मूर्ति बनाने वाला शिल्पी होता है और आत्मा को परमात्मा बनाने वाला महाशिल्पी होता है। वे महाशिल्पी होते हैं–गुरु। जिस प्रकार कुछ कंकड–पत्थर हटाए जाने पर धारती में छिपा जल का स्रोत फूट पड़ता है उसी प्रकार गुरु के वचन जब चित्त पर जमी विषय–कषायों के पंक को नष्ट कर देते हैं तब अंतरंग से ज्ञान का झरना फूट पड़ता है।

गुरु के वचन उन प्राणियों का मार्गदर्शन करते हैं जो संसार रूपी वृक्ष की जड़ का उन्मूलन करना चाहते हैं। गुरु के वचन ही अनादिकालीन अज्ञान रूपी रात्रि का अंत कर ज्ञान का प्रकाश देने में समर्थ हैं।

ऋषियों ने ऋग्वेद में ऊषा की स्तुति की है। उस अरुणगर्भ की स्तुति की है जहाँ से सूर्य का जन्म होता है। वे अंजलिबद्ध होकर परमात्मा की प्रार्थना करते हुए याचना करते हैं–'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् हे प्रभो! ले चलो हमें अंधकार से प्रकाश की ओर, क्योंकि प्रकाश ही पदार्थों के साक्षात्कार में सहायक है। त्यागी–व्रतियों की चर्या

प्रकाश की उपस्थिति में ही होती है। जब तक प्रकाश नहीं होता, उन्हें गमनागमन का निषेध है। 'ईर्यासमिति' का पालन प्रकाश में ही संभव है। यह प्रकाश जब आत्म निरीक्षण में प्रवृत्त होता है तब ज्ञान कहलाता है।

'हितानुबन्धि ज्ञानम्' ज्ञान के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह हितानुबन्धि होना चाहिए क्योंकि इसे आलोक अथवा प्रकाश कहा है। यदि कोई दीपक से पदार्थ-दर्शन के स्थान पर अपने वस्त्र जला ले, अपना अहित कर ले तो यह उसका दुरुपयोग होगा। यदि विज्ञान से विध्वंसक-प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण किया जाता है और निर्माण अथवा मानव कल्याण में उसको विस्मृत किया जाता है, तो यह दीपक लेकर कुएँ में गिरने के समान होगा। यदि ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भी आचरण सम्बंधी उपलब्धि नहीं हुई, अंतरंग परिणामों में पवित्रता, निर्मलता नहीं आई तो समस्त अध्ययन 'शुकपाठ' के समान ही रहा। जिस प्रकार अग्नि में विदग्ध होकर स्वर्ण परिशुद्ध होता है उसी प्रकार ज्ञानाग्नि में प्रवेश कर आत्मा निर्मल होती है, आत्मा पर लगी कर्मों की किट्टकालिमा निःशेष हो जाती है।

ऐसी ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्ज्वलित करने में समर्थ हैं गुरु वचन। मिथ्यात्व, मोह रूपी पंक को नष्ट करने में गुरु के वचन उपकारी सिद्ध होते हैं। गुरु के वचन अज्ञान रूपी अंधकार के कारण संसार में भटकते जीव को ज्ञानालोक सम्यक् मार्ग आलोकित करने हेतु प्रकाश स्तंभ हैं। चित्त रूपी गज पर अंकुश लगाने में समर्थ होते हैं।

प्रस्तुत कृति 'गुरुत्तं-5' परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के प्रवचनों का संकलन है। प्रत्यक्ष में जो गुरु वचनों से लाभान्वित न हो सके, परोक्ष में ही किन्तु गुरु वचनों के माध्यम से सम्यक् पथ पर आरूढ़ हो सकें, एतदर्थ गुरुवर श्री के प्रवचनों को यहाँ लिपिबद्ध किया गया है।

हमारे द्वारा प्रमादवश, अल्पज्ञतावश इस संपादन के कार्य में यत्किंचित् भी त्रुटि रह गई हो तो सुधी पाठक नीर-क्षीर विवेकी हंसवत् गुणग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुणों को ग्रहण और सारहीन नीर का परित्याग करें। संभव है आपका आनंद, संतोष, हित मार्ग संप्राप्ति एवं कल्याण हमारे परिणामों में विशुद्धि एवं आनंद का निमित्त बन सके।

इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण-प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुजनों को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयमपथ सदैव आलोकित रहे। शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षरशिल्पी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध-श्रुत आचार्य भक्ति सहित कोटिशः
नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु

॥ सर्वेषां मंगलं भवतु ॥

ॐ ह्रीं नमः

-आर्यिका वर्धस्वनंदिनी

अनुक्रमणिका

1.	व्यवस्थित जीवन	7
2.	जिंदगी का चार्जर	19
3.	नेतृत्व के सूत्र	34
4.	शांति की विधि	45
5.	जीवन यात्रा का मंगल कलश	63
6.	सदाचार की महिमा	74
7.	अमावस्या की रात्रि में प्रज्ज्वलित दीप	92
8.	कौन धनी त्रिशला के महल का	105
9.	आई वॉन्ट पीस	121
10.	घर को स्वर्ग कैसे बनायें	137

व्यवस्थित जीवन

महानुभाव! हमारा और आपका सभी का जीवन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जो चीज बहुत महत्त्वपूर्ण होती है उसका प्राणी अच्छी तरह से उपयोग करता है। महत्त्वपूर्ण वस्तु का सदुपयोग करना जिसे नहीं आया तब निःसंदेह उस वस्तु को प्राप्त करने का समुचित लाभ उसे न मिल सकेगा। जीवन में बहुत सारी वस्तुयें प्राप्त होती हैं, बहुत से पदार्थों को प्राप्त किया जाता है और उन सभी वस्तुओं व पदार्थों को व्यवस्थित करने का प्रयास भी किया जाता है। माता-बहिने रसोई में पहुँचकर यह ध्यान रखती हैं कि कोई भी वस्तु बिगड़ न जाये, चाहे वह सब्जी हो या दाल या अन्य कोई सामग्री। कहीं ऐसा न हो जाये कि सब्जी में नमक ज्यादा हो जाये तो सब्जी खाने के योग्य ही न रहे, कहीं रोटी जल न जाये तो खाने के योग्य ही न रहे, कहीं खीर को चलायें नहीं तो लग जाये जिससे बेस्वाद हो जाये। वे रसोई में तत्पर रहती हैं, उनका उपयोग प्रत्येक वस्तु को संभालने में रहता है कि कोई वस्तु खराब न हो जाये।

विद्यार्थी अपनी पुस्तकों को संभालते रहते हैं, कोई व्यवसायी अपने व्यापार को समुचित तरीके से संचालित करने का प्रयास करता है। सभी वस्तुओं को हम Manage करने का प्रयास करते हैं, सभी चीज व्यवस्थित होती हैं तो वही सुखद और शांतिकारक होती हैं, यदि वही अव्यवस्थित हो जाती हैं तब दुःख और अशांतिकारक बन जाती हैं। जीवन में सुख और शांति वस्तु से कम, हमारी व्यवस्था से ज्यादा मिलती है। किसी व्यक्ति के पास निस्सीम वैभव हो तब वह यदि अव्यवस्थित है तो वह वैभव सुख-शांति न दे सकेगा, यदि अल्प वैभव है और उससे अपने जीवन को व्यवस्थित किया जा रहा है तब वह अल्प वैभव भी जीवन में सुख और शांति दे सकता है।

हमारा जीवन सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण संसार की और कोई वस्तु नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति ने जीवन को अति निकट से देखा है, जीवन की वास्तविकता को समझने का प्रयास

किया है, जीवन के रहस्य को जानने की कोशिश की है, जो जीवन को जीवंत करना चाहता है, ऐसा व्यक्ति अपने जीवन को अवश्य ही व्यवस्थित करता है। यदि हमारा जीवन व्यवस्थित है तब संसार की समस्त वस्तुयें अव्यवस्थित होते हुये भी हमें उतनी हानि नहीं पहुँचा सकती जितनी हानि हमारा अव्यवस्थित जीवन पहुँचाता है।

जीवन व्यवस्थित बनता है संयम से, अनुशासन से, विवेक से। यदि हमारे जीवन में विवेक है तब हम अपने जीवन को संयमित और अनुशासित बना सकते हैं। जीवन में किसी भी वस्तु की प्राप्ति की अति वासना, कांक्षा, अभिलाषा यह नि:संदेह जीवन को दु:ख देने वाली होती है। व्यक्ति की तृष्णा का कहीं अंत नहीं है, बेलगाम आकांक्षायें व्यक्ति को परभव में तो दुर्गति में ले ही जाती हैं किंतु जीते जी भी ये दुर्गति का आभास कराती हैं। दु:ख और दर्द की सरिता में अवगाहन करता हुआ वह बेलगाम आकांक्षा वाला व्यक्ति न तो इस लोक में सुख को प्राप्त कर पाता है और ना ही परलोक में, इसीलिये आकांक्षाओं के ऊपर विवेक का अंकुश रहे तब नि:संदेह हम समीचीन आकांक्षाओं को पूर्ण करने का प्रथम प्रयास करेंगे। जो आकांक्षायें मिथ्या हैं, जिन आकांक्षाओं की पूर्ति से हमारा जन्म सफल और सार्थक नहीं होता है उन आकांक्षाओं को अपने जीवन के पृष्ठों में से निकालकर अलग कर देंगे जैसे कोई प्रूफरीडिंग करने वाला व्यक्ति अनावश्यक शब्दों को व त्रुटिपूर्ण शब्दों को निकालकर के अलग कर देता है।

महानुभाव! यदि किसी के पास हाथी है और हाथी पर लगाने वाला अंकुश नहीं है तब वह व्यक्ति सोचता है कि बिना अंकुश के हाथी पर सवारी करना बड़ा भयंकर हो जायेगा। यदि किसी के पास वायु की तरह दौड़ने वाला द्रुतगामी अश्व है किन्तु उस अश्व का लगाम नहीं है तो वह अश्व पर सवारी नहीं करेगा, यदि किसी के पास तीव्र वेग से दौड़ने वाली गाड़ी है किन्तु ब्रेक नहीं है तो ऐसी गाड़ी में वह यात्रा नहीं करना चाहेगा। हमारा जीवन सबसे सुखद, श्रेष्ठ व तीव्रगामी वाहन है इस जीवन रूपी वाहन में बैठकर के हम अपने गन्तव्य, यथेष्ट स्थान को

प्राप्त कर सकते हैं। किंतु यदि हमने अपने जीवन को नियंत्रित, संयमित नहीं किया तब समझ लेना चाहिये हमारी यात्रा बिना ब्रेक की गाड़ी की यात्रा है, जो बहुत दुखद व भयंकर हो सकती है।

अब हम अपने जीवन को प्रबन्धित कैसे करें, हमारा जीवन कैसे संयमित रहे? बंध शब्द प्रायःकर के ऐसा लगता है जैसे दुःख का कारण हो, बंध कोई नहीं चाहता, संसार का प्रत्येक प्राणी स्वतंत्रता चाहता है। अपने ही तंत्र में रहने का नाम है स्वतंत्रता। जब व्यक्ति अपने तंत्र में रहने में असमर्थ हो जाता है तब उसे परतंत्र रखा जाता है। जो व्यक्ति ईमानदारी से अपने कार्य करने में समर्थ हो तब उस व्यक्ति पर किसी को शासन करने की आवश्यकता न पड़ेगी। प्राणी अपने कर्तव्यों को विस्मृत कर देता है और अधिकारों का दुरुपयोग करना प्रारंभ कर देता है, इसीलिये देश की नीति, देश की संहिता, नाना प्रकार के नियम बनाये जाते हैं जिससे व्यक्ति का जीवन स्वयं के लिये भी सुखद हो जाये और दूसरों के लिये भी सुखद बने। यदि व्यक्ति स्वयं ही अपने कर्तव्यों का पालन करे तब दूसरे को उससे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है।

किसी दुकानदार के यहाँ एक व्यक्ति नौकरी करने के लिये आया, मालिक ने उसे नौकरी पर रख लिया, और कहा-आप कितना पैसा चाहते हैं, वह बोला आप कितना देंगे? तो मालिक ने कहा आप अपनी जितनी योग्यता समझते हैं वह इसमें लिख दीजिये और व्यापार संभालिए। आप जितना वेतन समझते हैं उतना ले लीजिए। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि क्या संसार में ऐसा व्यापारी हो सकता है जो स्वयं कह दे कि तू अपना मूल्यांकन जितना करना चाहता है उतना वेतन ले ले उसने पूछा-भाई! मेरी समझ में एक बात नहीं आयी आपने ऐसा कहकर मुझे धर्म संकट में डाल दिया। मेरा मन कहता है कि मैं अपना वेतन लगभग 50,000 रू. महीने रखूँ किंतु बाद में मुझे लगता है 50 हजार रू. तो ज्यादा होगा क्योंकि कोई व्यक्ति किसी की दुकान पर काम करता है तो 10-15-20 हजार से ज्यादा कोई नहीं देता, यदि मैं 50 हजार रू. लेता हूँ तो मैं

नि:संदेह बेईमानी करता हूँ मेरा मन कहता है ये नहीं करना है, मेरा भगवान् मुझे देख रहा है। उसने जिज्ञासावश पुनः दुकानदार से पूछा आपको मुझ पर विश्वास कैसे हुआ? दुकानदार बोला आप पर नही मुझे भगवान् पर विश्वास है, भगवान् मेरा हिस्सा मुझे अवश्य देगा, तेरा हिस्सा तुझे अवश्य देगा।

महानुभाव! हमारा जीवन जब संयमित होता है तब नि:संदेह जीवन में सही आनंद आने लगता है, वही क्रिया-वही चर्या वही प्रवृत्ति जब बेईमानी संयुक्त होती है, तब हमें वह दु:ख देने वाली होती है और जब वही क्रिया-चर्या-प्रवृत्ति ईमानदारी से, सत्य के धरातल पर खड़े होकर सम्पन्न की जाती है तब वही जीवन में सुख और शांति देने वाली हो जाती है। अपने जीवन को हम प्रबन्धित कैसे करें? बंध से घबरायें नहीं, कोई-कोई बंध ऐसा होता है जो बंधन में डालने वाला होता है, और कोई-कोई बंध ऐसा होता है जो बंधन को खोलने वाला होता है। पैर में लगा हुआ काँटा आपको बहुत दर्द देता है किन्तु पैर में लगे हुये काँटे को निकालने के लिये दूसरे काँटे की भी आवश्यकता पड़ती है। एक काँटा तो दर्द दे रहा है और दूसरा काँटा दु:ख दर्द को कम कर रहा है ऐसे ही एक बंधन हमें जीवन में दु:ख और अशांति देने वाला होता है दूसरा बंधन हमें दु:ख और अशांति से बचाने वाला होता है, हमें दुष्कृत्यों से पापों से बचाने वाला होता है। यदि आप कोई नियम लेते हैं कि मैं किसी की हत्या नहीं करूँगा, तो इस नियम ने आपको जब कोई आक्रोश आया, कषाय का तीव्र वेग आया तो गलत काम करने से बचाया, आपने नियम लिया कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा, आपका मन जब लोभ के वशीभूत होकर या हास्य के वशीभूत होकर के या किसी के डर के कारण या अन्य किसी भावना से झूठ बोलने का कर रहा था कि क्या फर्क पड़ता है कौन देख रहा है किंतु मेरी आत्मा और परमात्मा दोनों हमेशा जानते और देखते हैं इसीलिये मैं झूठ नहीं बोलूँगा मैंने नियम लिया है। इस प्रकार नियम लेने से व्यक्ति पाप के फल दु:खों से बच जाता है।

जीवन में यम, नियम, संयम आदि प्रारंभ में बंधन जैसे प्रतीत होते हैं किंतु बाद में ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक हमारा जीवन बंधन से युक्त नहीं होता है तब तक हमारा जीवन सफल और सार्थक नहीं होता और बंधन युक्त जीवन ही हमें लक्ष्य तक पहुँचाने में समर्थ होता है। उच्छृंखल जीवन जीने से कोई भी व्यक्ति अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच पाया। आप देखते हैं पतंग आकाश में उड़ती है किन्तु कब? जब उस पतंग के गले में रस्सी डली हो। जब उस धागे को ढील देते हैं, पुनः खींचते हैं तो वह ऊँचाईयों को छूती चली जाती है। ऐसे ही हमारे जीवन में समय-समय पर नियंत्रण भी जरूरी है और समय-समय पर ढील भी जरूरी है, यदि ढील देते जायेंगे तो हमारा जीवन प्रमादी बन जायेगा हम आलसी बन जायेंगे और हम निःसंदेह अधिकारों का दुरुपयोग करते हुये कर्त्तव्यों की इतिश्री कर देंगे, भूल करके दुर्गति के पात्र बन सकते हैं। इसीलिए हमारे जीवन में वह नियंत्रण भी होना चाहिये और समय-समय पर वह ढील भी होनी चाहिये जिससे हम बढ़ सकें।

विवेक का अंकुश जब भावनाओं पर होता है तब निःसंदेह भावनाओं को शमन करने में कोई भी व्यक्ति समर्थ हो सकता है अन्यथा भावनायें तो जलप्रवाह की तरह से हैं यह कहीं भी बहती चली जाती हैं। बाल्टी यदि रस्सी से बँधी है तो वह कितनी भी गहरी चली जाये उस बाल्टी को पुनः खींचकर कभी भी ऊपर लाया जा सकता है। रस्सी नहीं है तो चार-छः हाथ के गड्ढे से भी उसको निकालना मुश्किल है। ऐसे ही हमारे जीवन में संयम का धागा होना जरूरी है। पतंग भी जब तक धागे के साथ है तब तक ऊँचाई को छूती है व सुरक्षित है जैसे ही वह बंधन टूट गया तब वह निःसंदेह हवा के झोंके से एक साथ नीचे धरातल पर आ गिरेगी, बाल्टी में रस्सी नहीं है तो वह ऊपर आ न सकेगी।

महानुभाव! जीवन में ये दो चीज आवश्यक हैं। भावनाओं का प्रवाह भी हो और संयम का बंधन भी होना चाहिये। आपने जो वस्त्र पहने हैं उसमें ताना ही ताना हो बाना नहीं हो तो कपड़ा नहीं बनता इसीलिए ताना भी जरूरी है बाना भी जरूरी है। कोई भी नदी दो किनारों के माध्यम से

बहती है दोनों किनारे पुष्ट हों यदि एक किनारा कमजोर है दूसरा किनारा सबल है तब नदी यथेच्छ स्थान पर न पहुँच सकेगी ऐसे ही जीवन में भावनाओं का भी महत्त्व होता है और संयम का भी महत्त्व होता है तभी हमारा जीवन सुखद हो सकता है।

अकेली भावनाओं से भी हमारा जीवन सफल नहीं होता और अकेली कठोर साधना से भी हमारा जीवन सफल नहीं होता दोनों की नितांत आवश्यकता होती है जैसे कोई भी पक्षी आकाश में उड़ता है, दो पंखों के माध्यम से उड़ता है यदि एक पंख नहीं है तो पक्षी उड़ न सकेगा, यदि कोई एक पंख छोटा है दूसरा बड़ा है तब भी पक्षी आकाश में निराबाध गति नहीं कर सकेगा दोनों पक्ष समान होंगे तभी गति संभव हो सकती है। हमें अपने जीवन को संभालने की कोशिश करना है, जीवन हम बाहर से ही न संभालें अंदर से भी संभालना जरूरी है जैसे कुंभकार घट बनाता है तो वह घट बनाते समय केवल बाहर से चोटें ही नहीं मारता है अंदर भी हाथ धरता है यदि अंदर हाथ न रखे और बाहर से चोटें मारे तो वह उस घट को खण्डित कर देंगी घट बन नहीं पायेगा और अंदर में हाथ रख लिया, बाहर चोट नहीं मारी तो वह घट वृद्धि को प्राप्त नहीं होगा।

महानुभाव! इसी प्रकार हमें अपने जीवन में भावनाओं को भी संभालकर रखना है, कभी भावनाओं को दूषित नहीं होने देना है और ऊपर से अपने आप को नियंत्रित भी रखना है। यदि दोनों बातें होती हैं तब तो ठीक होता है एक की कहीं कमी आती है तब ठीक नहीं होता। ट्रेन दोनों पटरी पर चलती है तो अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाती है यदि एक पटरी खराब हो जाये तो ट्रेन अपने यथेच्छ स्थान तक नहीं पहुँच पाती। हमारे अंतरंग का जीवन हमारे लिये है व बहिरंग का जीवन दूसरों के लिये है। कई बार हमारे मन में भाव आता है कि हमसे दूसरे प्रभावित हों, कई बार ऐसा हो भी जाता है कि आपके जीवन से दूसरे लोग प्रभावित होते हैं, आपकी बड़ी तारीफ व प्रशंसा करते हैं किन्तु उससे स्वयं पूछो कि तुम कैसे हो? वह कहता है मुझे तो एक क्षण की

भी शांति नहीं मिल रही अंदर से बहुत अशांत हूँ, अंदर में बहुत पीड़ा व वेदना है, जो जीवन में सुख शांति होना चाहिये वह नहीं मिल रही। एक व्यक्ति का जीवन ऐसा हो सकता है जिसे अंदर में तो बहुत शांति मिल रही है, अपने आप में तो मस्त है और सामने वाले व्यक्ति के लिये वह काँटे की तरह चुभने वाला हो रहा है। तो जीवन काँटे की तरह दूसरों को कष्ट देने वाला भी न हो और जीवन ऐसा भी न हो जो स्वयं की सुरक्षा भी न कर पाये अंगूर की तरह से, वह नारियल की तरह हो जो बाहर से अपनी सुरक्षा करते हुये उसके अंतरंग में शीतल सलिल विद्यमान है। जिससे किसी की तृषा-क्षुधा शांत की जा सकती है।

ऐसे ही हम अपनी भावनाओं से आत्मा की क्षुधा-तृषा को शांत करते हैं। अंतरंग की भावनाओं से हमें स्वयं सुख-शांति का अनुभव होता है। हमारी बाह्य प्रवृत्ति से दूसरे हमसे प्रभावित होते हैं वह हमें देखकर के जीना सीख सकते हैं, वह हमें देखकर परिणाम अच्छे कर सकते हैं अतः हमें दोनों पक्षों को देखना जरूरी है। कोई भवन बाहर से बहुत सुंदर हो किंतु अंदर में बदबू आ रही है तो उस भवन में किसी व्यक्ति का रहना मुश्किल हो जायेगा और कोई भवन यदि बाहर से खराब है अंदर से ठीक है तो बाहर भी कोई व्यक्ति खड़ा होना नहीं चाहेगा तो भवन का अंदर व बाहर दोनों तरफ से सुव्यवस्थित होना आवश्यक है। यदि बाहर से अच्छा बना लिया तो लोग देखकर तारीफ तो कर देंगे किंतु जो अंदर रह रहे हैं वे कहेंगे हम तो नरक का आभास कर रहे हैं और अंदर से घर अच्छा है बाहर से खराब है तो व्यक्ति बाहर से नाक तोड़कर जायेंगे कि देखो कैसा टूटा-फूटा पड़ा है इसीलिए हमारे अंतरंग व बहिरंग जीवन में एकता होना चाहिये।

सामाजिक जीवन के लिये बहिरंग का अच्छा होना बहुत जरूरी है किंतु आत्मीय जीवन के लिये अंतरंग का अच्छा होना बहुत जरूरी है। यदि हमारे अंदर में क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-मद इत्यादि भरे पड़े हैं, विषय कषायों का आवेग आ रहा है तब निःसंदेह हमारी चित्त की

भूमि पर ऐसा लग रहा है कि कषायों की होली जल रही है हमारा चित्त क्षणभर की शांति प्राप्त नहीं कर पा रहा और यदि हमारी बाह्य प्रवृत्ति दूसरों को कष्टकर है तब भी वह हमारा जीवन वरदान स्वरूप नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्ति कुशल होते हैं वे नीले-काले-हरे आदि रंगों से भी अच्छा चित्र बना सकते हैं और जो व्यक्ति अकुशल होते हैं उनके पास अच्छे-अच्छे रंग भी दे दिये जायें उससे भी बदसूरत चित्र बनाया जा सकता है। पत्थर अच्छा है और शिल्पकार अच्छा नहीं है तो वह अच्छी मूर्ति न बना पायेगा और शिल्पकार अच्छा है पत्थर कच्चा है तब भी मूर्ति अच्छी न बना सकेगा। पत्थर का मजबूत होना भी जरूरी है और शिल्पकार का होशियार होना भी जरूरी है। दोनों का अनुकूल होना जरूरी है।

महानुभाव! हमें हमारा जीवन इस प्रकार व्यवस्थित करना है जिससे यह ऊपर की ओर गति करे। अभी हम कहते हैं हमारा जीवन सहज नीचे क्यों जाता है? तो यह हमारा वैभाविक परिणाम है।

नल की अरु नर नीर की, गति एक ही सी होय।
ज्यों-ज्यों ऊँचो होय चले, त्यों-त्यों नीचे होय।।

पानी बहकर के नीचे की ओर जाता है, मनुज की सहज प्रवृत्ति नीचे की ओर (अधो प्रवृत्ति) करने का स्वभाव है, किंतु पानी को बाँध करके ऊपर की ओर ले जाया जा सकता है। स्वच्छंद और स्वतंत्र पानी को ऊपर नहीं ले जाया जा सकता। यदि पानी ऊपर छत पर ले जायेंगे तो पाइप के माध्यम से, बाल्टी-टंकी किसी में भरकर ले जायेंगे खुला पानी ऐसे ऊपर नहीं जा पायेगा, ऐसे ही हमें अपने जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाना है तो संयम से बाँधकर के ले जाना पड़ेगा क्योंकि उच्छृंखल/स्वतंत्र जल तो बहकर के नीचे आ जाता है। हमारा जीवन भी जब स्वतंत्र व उच्छृंखल हो जाता है वह भी बहकर के नीचे की ओर चला जाता है। इसीलिये जैसे जल को ऊपर ले जाने के लिये बंधन बहुत जरूरी है ऐसे ही अपने जीवन को ऊँचाई तक ले जाने के लिये नियम-संयम-व्रतादि का बंधन बहुत आवश्यक है।

जल यदि शुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब उसे बिना बंधन में बाँधे ऊपर ले जाया जा सकता है कैसे? तो या तो पानी वाष्प बन जाये तो वह स्वतः ऊपर पहुँच जायेगा या पानी इतना ठंडा हो जाये कि जमकर बर्फ हो जाये उस बर्फ को बाँधने की आवश्यकता नहीं है उसे हाथ में पकड़कर ऊपर-नीचे कहीं भी ले जाया जा सकता है किन्तु यूँ जल को हाथ में पकड़कर नहीं ले जा सकते। ऐसे ही हमारी आत्मा या तो पूरी परिशुद्ध हो जाये सिद्धों जैसी आत्मा बन जाये तब निःसंदेह हम ऊर्ध्वगामी बन सकते हैं और मंजिल तक पहुँच सकते हैं या फिर इतने ठंडे बन जायें कि पाषाण की मूर्ति की तरह से कोई हमसे कुछ भी कहता रहे, चाहे हमारी प्रशंसा करे, दीपों से आरती करे, चाहे द्रव्य लेकर के पूजन करे, जय-जयकार करे, चाहे हमारा कितना भी सम्मान करे हम उससे भी प्रभावित नहीं होंगे और चाहे कोई हमारी कितनी भी निंदा करे, अपमान करे, तिरस्कार करे, अस्त्र-शस्त्र का वार करे उससे भी प्रभावित न होंगे। हम इतने निर्मल हो जायें, इतने तटस्थ हो जायें कि हमें बाहर का प्रभाव प्रभावित न कर सके। तब हम निःसंदेह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

महानुभाव! अपने जीवन को व्यवस्थित कैसे करना है? जैसे कोई छोटा व्यापारी होता है वह व्यापारी 100 रू. की 20 वस्तुऐं खरीदकर लाया, वह सोचता है 5 रू. की एक वस्तु है और छः रूपये की बेच रहा है तो इसके माध्यम से शाम तक में 20 रू. कमा लूँगा। वह अपने दिमाग में अपना एकाउण्ट्स बनाता रहता है या कोई सामान्य व्यापारी अपनी लिस्ट बना लेता है या कोई बड़ा व्यापारी है तो वह सबसे पहले टेण्डर का गोल बना लेता है उसके बाद में ग्रॉस प्रॉफिट ग्रास लॉस निकाल लेता है यदि gross loss है तो सावधन होता है कि मेरे कहाँ पर खर्चे बढ़ रहे हैं, वे कहाँ से कम किये जा सकते हैं उसके बाद में उम्मीद तो नहीं है कि net profit हो जाये net loss ही निकलकर आयेगा संभावित वहाँ पर भी बैलेंसशीट बनायी तब भी उसको ये लग रहा है कि assets कम है और लायबिलिटी ज्यादा

आ रही है अब मैं क्या करूँ कैसे करूँ तो वह व्यक्ति अकाउण्ट्स को जानने वाला उसे मैनेज करता है।

यदि आपने बीज बोने के पहले सावधनी रखी है तो आपका वृक्ष सही फल देने में समर्थ होगा, और बीज आपने प्रमाद से बो दिया, सड़ा बीज है तो उत्पन्न ही नहीं होगा, बंजर भूमि है तब भी उत्पन्न नहीं होगा कदाचित् कोई अच्छा बीज अच्छी भूमि में बो दिया यदि जल सिंचन नहीं किया तो वह आगे वृद्धि न कर सकेगा, सूर्य का प्रकाश नहीं मिल रहा तो सूख जायेगा या उचित खाद नहीं मिल रहा तो सूख जायेगा इसीलिये उसके लिये सब व्यवस्था करना जरूरी है। ऐसे ही अपने जीवन के लिये जो आवश्यक तत्त्व हैं, एक शरीर पोषण के लिये सभी विटामिन, खनिज लवण, सभी तत्त्व सही मात्रा में ही चाहिये ऐसे ही हमारे जीवन में सभी की आवश्यकता है तभी हमारा जीवन व्यवस्थित बनेगा। हमारे जीवन में प्रेम और वात्सल्य की भी आवश्यकता है, उपकार-सहयोग की भी आवश्यकता है, नियम-संयम की भी आवश्यकता है, त्याग-तपस्या की भी आवश्यकता है, मधुर व्यवहार, अनुशासन आदि सभी की आवश्यकता है।

जीवन में सभी रंग होने चाहिये, इन्द्रधनुष में सात रंग होते हैं इसीलिये वह अच्छा लगता है यदि इन्द्रधनुष एक ही रंग का होता तो अच्छा नहीं लगता, ऐसे ही हमारा जीवन सप्तरंग से युक्त होता है रंग से आशय है नाना प्रकार से नियंत्रण, वाणी पर, काया पर, मनोभावों पर नियंत्रण, चित्त की वृत्तियों पर नियंत्रण, हमारे व्यवहार पर नियंत्रण, आचरण पर नियंत्रण, खानपान पर नियंत्रण, ये सब चीज जब देखने में आती हैं तो जीवन इन्द्रधनुष की तरह सप्तरंगी हो जाता है। जैसे एक ही ध्वनि में गाने वाला संगीतकार सुबह से शाम तक गाता है तो सब बोर हो जाते हैं वह जब बार-बार चाल बदलता है, लय बदलता है तो सुनने वाले झूमते हैं-नाचते हैं ऐसे ही हमारा जीवन एकाकी जैसा बना लेंगे तो नहीं चल पायेगा। हमारे जीवन को व्यवस्थित करने के लिये सभी तत्त्व आवश्यक हैं।

इस जीवन में माता-पिता का स्नेह भी चाहिये, भाईयों का भाई-चारा भी चाहिये, सेवकों की आज्ञाकारिता भी चाहिये, मित्रों के प्रति सहयोग की भावना भी चाहिये, साधु सेवा का भाव भी चाहिये जब सब प्रकार के व्यवहार हमारे जीवन में आते हैं तब नि:संदेह हमारा जीवन सुखद और शांतमय बन जायेगा। आप किसी भी वाहन के पहिये को देखना उस पहिये की अकेली परिधि होती है तो गाड़ी को ले जाने में समर्थ नहीं होता चाहे साइकिल भी है उसमें केन्द्र भी है, उसमें तार लगे होते हैं तभी उसका वजन उठा पाता है, चाहे वाहन कोई भी हो। जैसे परिधि का भी होना जरूरी है, और केन्द्र से परिधि तक के लिये दूरी को पूर्ण करने वाला, उसके वजन को अपने ऊपर लेने वाला बीच का वह स्थान भी जरूरी है उसी तरह हमारे जीवन में, जीवन की परिधि भी सुखद होना चाहिये, और हमारे जीवन के अंतरंग के केंद्र से परिधि तक पहुँचने वाली व्यवहारिकता, प्रवृत्ति, आचरण भी समुचित और संतुलित होना चाहिये तभी हमारा जीवन सुखद और शांतमय बन सकता है।

जीवन में यदि हमने एक ही पक्ष को देखा, दूसरे पक्ष को गौण कर दिया तब नि:संदेह एक पक्ष का भी समुचित लाभ नहीं ले सकते। रात्रि के बाद ही प्रभात होता है, ऐसा नहीं है कि बिना रात्रि के प्रभात जीवन में हो जाये। दिन में सूर्य का प्रकाश भी जरूरी है रात्रि भी जरूरी है, शरीर से श्रम करना भी जरूरी है और श्रम को दूर करने के लिये विश्राम भी जरूरी है दोनों चीज आवश्यक होती हैं। हम अपने जीवन को व्यवस्थित बनायें, यदि हमारा जीवन व्यवस्थित बन गया तब हमारे ऊपर किसी को अंकुश लगाने की आवश्यकता न पड़ेगी। आत्मानुशासन ही विश्व का सबसे बड़ा अनुशासन है, जो आत्मा के अनुशासन में नही रह सकता उसे चाहे विश्व के सभी लोग अनुशासित करें किंतु वे बाहर से अनुशासित कर सकते हैं अंतरंग की प्रवृत्तियों पर अनुशासन नहीं कर सकते हैं और अंतरंग की प्रवृत्तियों को अनुशासित किये बिना सुख-शांति की अनुभूति नहीं हो सकती।

हमारा जीवन किस प्रकार से प्रबंधित हो, कैसे अनुशासित बने इसके लिये सतत पुरुषार्थरत रहें। यदि आप अपने जीवन को सुगंधमय, सौरभमय, आनंदमय, हर्षमय बनाना चाहते हैं तो अपना जीवन व्यवस्थित करें, अपने प्रत्येक कार्य को विवेकपूर्वक मर्यादा में रहकर करें। मर्यादा के साथ किया गया भोग निःसंदेह सुख का कारण बनता है, अमर्यादित भोग, रोग का कारण बनता है इसीलिये मर्यादा में रहकर प्रवृत्ति करना ही श्रेयस्कर है।

''जैनम् जयतु शासनम्''

''जिंदगी का चार्जर''

महानुभाव! जीवन यंत्र की तरह से निरंतर गतिमान है। यंत्र जब तक ऊर्जा से युक्त होता है वह अखण्डित है। यंत्र में अपना प्रभाव दिखाने की सामर्थ्य है। जब तक वह अंतरंग की शक्ति से सक्रिय है तब तक ही वह यंत्र उपयोगी माना जाता है। जो यंत्र अपना कार्य करने में असमर्थ है ऐसे यंत्र को फिर कबाड़े में बेच दिया जाता है। हमारा और आपका जीवन भी यंत्र की तरह से है जिस यंत्र का निर्माण जिस कार्य को करने के लिये किया है, उस कार्य को उस यंत्र से सम्पन्न कर लेना ही बुद्धिमानी है। यदि वह यंत्र उस कार्य को नहीं कर रहा है तो वह भारभूत हो जाता है।

आपके घर में कोई भी वाहन है यदि वह आपको गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँचा सकता, वह वाहन स्टार्ट भी नहीं हो रहा है तो गैरिज में रखा वह वाहन जब समय पर काम नहीं आ रहा तो ऐसा लगता है इसे निकालकर बेच दो। आपके हाथ में बंधी घड़ी यदि सही समय नहीं बताती है तब दूसरों को धोखा देने के लिये कब तक बाँध करके रखोगे। तुम स्वयं समय पर काम सम्पन्न न कर पाओगे तब एक दिन आपके मन में ख्याल आयेगा जो घड़ी सही समय नहीं दे रही है उस घड़ी को हाथ में बाँधने से लाभ क्या है और बुद्धिमान व्यक्ति उस घड़ी को निकालकर अलग कर देगा। यदि आपके जेब में दो-चार मोबाइल भी रखे हैं किंतु कोई भी मोबाइल काम नहीं कर रहा है उस क्षेत्र में उसके टॉवर नहीं आ रहे हैं, या मोबाइल चार्ज नहीं है तब उस मोबाइल को जेब में रखने से क्या फायदा। चाहे मोबाइल कितना भी अच्छा हो जिससे आप सम्पर्क करना चाहते हैं उससे सम्पर्क कराने में असमर्थ है तो फिर आप कहोगे इससे हमें क्या प्रयोजन? इसे अलग करो।

ऐसे ही हमारी और आपकी जिंदगी है। जिस उद्देश्य को लेकर हमने जीवन को प्राप्त किया, पूर्व भव में खूब पुरुषार्थ किया, पुण्य का

संचय किया, बहुत अच्छे कार्य किये, बड़ी भावनाओं के फलस्वरूप ये जिंदगी प्राप्त की है। यदि वह जिंदगी हमारे काम नहीं आ रही है तब ऐसा लगता है कहीं ये जिंदगी भारभूत तो नहीं है। जिस भोजन सामग्री को आप ग्रहण नहीं कर सकते उसे सिर पर लादकर के चल रहे हैं, उदर क्षुधा से पीड़ित है ऐसा लग रहा है चूहे कबड्डी खेल रहे हैं फिर भी जब खा नहीं सकते तो ऐसी सामग्री ढोने की क्या आवश्यकता।

जिस जिंदगी से सार नहीं निकाला जा सकता वह जिंदगी बेकार और बोझल हो जाती है। जिस दूध में से घी नहीं निकलता है उस दूध को मथना व्यर्थ है। यदि बालू पेलकर तेल नहीं निकलता तो बालू पेलना व्यर्थ है, यदि जल मंथन से घृत की प्राप्ति नहीं होती तो जल मंथन व्यर्थ है, ऐसे ही हमारे जीवन का यदि कोई निष्कर्ष निकलकर नहीं आ रहा है तो ऐसा लगता है कि हमारी जिंदगी भी बेकार होती चली जा रही है। इस जिंदगी को साकार कैसे करें? जिंदगी को सार्थक और सफल कैसे करें?

हम जीवन में बहुत सारी चर्चायें करते हैं किंतु उन चर्चाओं में हमारी जिंदगी नहीं होती और सब कुछ होता है। जिसमें हमारी जिंदगी नहीं है और सब कुछ हो वे चर्चायें हमारी जिंदगी में काम नहीं आ पाती। कोई बहुत बड़ा मोटा सा एलबम है उस एलबम में यदि आपका फोटो नहीं है तो उसे देखने में आपको 2-4 मिनट लगेंगे और उसमें यदि आपके 10-20 फोटो हैं विभिन्न मुद्राओं में, तब उसे देखने में एक दिन भी कम पड़ जायेगा और उस एलबम को बार-बार देखोगे, दिखाओगे और समीक्षा करोगे। ऐसे ही जिन चर्चाओं में हमारी जिंदगी शामिल नहीं होती है वे चर्चायें उस एलबम की तरह से हैं जिस एलबम में हमारा फोटो न हो और ऐसे व्यक्तियों के छाया चित्र लगे हैं जिन्हें हम जानते भी नहीं उनके चित्र चाहे कितने भी अच्छे हों या बुरे हों आपको क्या फर्क पड़ता है। आप उन्हें आगे खिसका देते हैं। हमें भी

उन चर्चाओं को ऐसे ही आगे खिसका देना चाहिये जिन चर्चाओं में हमारी जिंदगी शामिल नहीं है। जब चर्चाओं में हमारी जिंदगी है तब तो हमारी जिंदगी सफल और सार्थक है।

महानुभाव! जिंदगी को सफल और सार्थक कैसे करें? ये जीवन का यंत्र समीचीन रूप से कार्य करने में कैसे समर्थ हो सकता है? यह जीवन का यंत्र किस प्रकार हमारे लिये महत्त्वपूर्ण और वरदान बन सकता है, ऐसा कुछ प्रयास करना है। आपके पास कोई भी इलैक्ट्रॉनिक उपकरण है, उसको आप पहले चेक कर लेते हैं ठीक है या नहीं, या हम जो कार्य करने जा रहे हैं उसमें जो सहयोगी यंत्र है उसको पहले देख लेते हैं, जितने भी इलेक्ट्रॉनिक आइटम हैं उसमें चार्जिंग है या नहीं, चाहे आपका मोबाइल है, लैपटॉप या टॉर्च हो या अन्य वस्तुयें यदि चार्ज नहीं हैं तो आपके लिये भारभूत हैं। इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता है कि आपकी जेब में मोबाइल एक है या दस, फर्क इससे पड़ता है उसमें से सही काम कौन सा कर रहा है।

ऐसे ही हमारी जिंदगी 10 साल की हो या 100 साल की इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, फर्क इससे पड़ता है कि उस जिंदगी में कोई सार्थक कार्य किया या नहीं किया। भगवान् महावीर स्वामी के गणधर प्रभास जिन्होंने 24 वर्ष की अवस्था में ही मोक्ष को प्राप्त कर लिया, भगवान् महावीर स्वामी ने स्वयं 72 वर्ष की अवस्था में मोक्ष प्राप्त कर लिया। आज का व्यक्ति 80-85 वर्ष की उम्र में भी रात्रि भोजन त्याग न कर पाये, जमीकंद का त्याग न कर पाये, देवदर्शन-पूजन का नियम न ले पाये या कोई और भी अच्छा सुकृत न कर पाये, संसार-शरीर भोगों से विरक्ति का भाव चित्त में न आये तो जिंदगी 80-90-100 या इससे भी अधिक वर्ष की हो तो भी बेकार है, उससे अच्छी जिंदगी तो उन प्रभास मुनिराज की है जिन्होंने 24 वर्ष की उम्र में मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

महानुभाव! हमें इस जिंदगी को सार्थक करना चाहिये, यह जिंदगी भी चार्ज होनी चाहिये। प्रारंभ में आप कोई भी गाड़ी लाते हैं उस गाड़ी

में डीजल पेट्रोल बार-बार डालना पड़ता है तब वह गाड़ी तब काम करती है। अब कुछ समय बाद आप शिकायत करने नहीं जाते कि मैंने गाड़ी के 10 लाख रुपये या इससे ज्यादा दिये फिर भी ये चलती नहीं है, वह कहेगा भैया! इसमें डीजल पेट्रोल तो डलवाओ। अरे! मैंने इतने पैसे पहले दे दिये अब फिर से पैसे खर्च करके क्यों डीजल डलवाऊँ। तो भैया? तुमने जो रूपये दिये वह गाड़ी के लिये दिये जब गाड़ी से काम लोगे तो बार-बार उसमें डीजल-पेट्रोल देना ही पड़ेगा। तुम्हें जीवन मिला है, शरीर मिला है इससे काम करते हो तो शरीर को भी तो भोजन देते हो, इस शरीर को भोजन दिया जाता है तभी कार्य कर पाता है। दिन में कार्य करने के उपरांत पुनः इसे चार्ज करने के लिये रात्रि में नींद लेते हो, यदि विश्राम न करो तो यह शरीर सही काम नहीं कर पायेगा।

किसी भी मशीन से निरन्तर काम करने के उपरांत बीच में गैप जरूर देते हैं जिससे उसकी चार्जिंग होती रहे, जब कोई मशीन गरम हो जाती है तब उसमें पानी डालकर के ठंडा करते हैं या पानी का पाइप अंदर से जाता है कि इंजन गरम न हो पाये। हमारा शरीर भी इसी प्रकार से काम देने में समर्थ होता है। किंतु हम जिंदगी के चार्जर की बात कह रहे हैं देह के चार्जर की नहीं। हम अपनी जिंदगी को चार्ज कैसे करें? और चार्ज न करें तो क्या हर्ज है? हर्ज ये ही है कि हम डिस्चार्ज जिंदगी को लेकर जीते रहे तो सैकड़ों वर्ष की जिंदगी से भी कोई काम न हो पायेगा। किसी की अन्तर्मुहूर्त की जिंदगी भी काम कर सकती है। आठ साल में भी जीव केवली बन सकता है मोक्ष जा सकता है और हम 60 वर्ष में या 160 वर्ष में अपनी आत्मा को नहीं जान पाये, अपने जीवन को सफल और सार्थक करने का कोई कार्य नहीं कर पाये तो हमारी जिंदगी स्वयं हमारे ऊपर बोझ हो जायेगी।

कोई भी मिठाई (जलेबी, रसगुल्ला) यदि उसमें चाशनी नहीं है, सूखी बनी रखी है तो क्या उसमें कोई स्वाद आयेगा? नहीं आयेगा क्योंकि बिना मिठास के कोई मीठा नहीं कहलाता। आपकी कितनी

भी अच्छी रसोई बनी है यदि उसमें नमक नहीं पड़ा है, तो वह स्वाद नहीं दे पायेगी। यदि आपके जीवन में बहुत सारे सुख-शांति के साधन इकट्ठे भी हो गये, किन्तु आपका चित्त अशांत है तो वे साधन आपको सुख-शांति देने में सहकारी नहीं हैं।

हमारा जीवन केवल शरीर से नहीं चलता है, किसी भी व्यक्ति का जीवन केवल रोटी-कपड़ा और मकान से नहीं चलता है, इसके अतिरिक्त उसे और भी कुछ चाहिये। वृक्ष के लिये केवल बीज अंकुरित हो गया, जड़ों के माध्यम से जमीन में से जल खींच लिया और खाद भी दे दिया इतने मात्र से वृक्ष पल्लवित और पुष्पित नहीं होगा, इसके साथ-साथ वृक्ष को प्रकाश भी नित-नित चाहिये, नित्य ही कार्बनडाई ऑक्साइड भी चाहिये तभी वह वृक्ष जीवित रह सकता है अन्यथा केवल खाद और पानी से केवल जमीन में रहने से उसे वायु नहीं मिल रही है, प्रकाश नहीं मिलता है तो वृक्ष मर जायेगा, जीते जी मृत कहलायेगा, ऐसे ही हमारी जिस जिंदगी में चार्जिंग नहीं है, ऐसा लग रहा है वह जिंदगी जीते जी मृत तुल्य बनती चली जा रही है इस जिंदगी को चार्ज कैसे करें? चार्ज करना जरूरी क्यों है? वह इसीलिए जैसे घड़ी में चाबी न भरो तो घड़ी चलती नहीं है।

एक व्यक्ति लकड़ी काटने के लिये किसी सेठ के यहाँ गया, सेठ ने कहा मेरे बगीचे के सब पेड़ सूख गये हैं, इन्हें काटकर यहाँ लकड़ी का ढेर लगा दो, मैं यहाँ दुबारा बगीचा लगाऊँगा। उस व्यक्ति ने उत्साह के साथ कुल्हाड़ी लेकर काम करना प्रारंभ किया और सुबह 9 बजे से शाम 6 बजे तक खूब काम किया और दिनभर में उसने छः पेड़ काटे। अब दूसरे दिन सोचता है यदि मैं काम जल्दी कर लूँगा तो मुझे पैसा जल्दी मिल जायेगा, चाहे काम को चार दिन में करूँ या 15 दिन में, यदि जल्दी कर लूँगा तो अन्य काम मिल जाएगा और काम देरी से करूँगा तो हो सकता सेठ जी पूरा पैसा न भी दे। इसीलिये दूसरे दिन 8 बजे चला गया और 7 बजे तक कार्य किया किंतु आज

तो वह पाँच ही पेड़ काट पाया, तीसरे दिन सुबह 6 बजे से जाता है शाम के 8 बजे तक खूब मेहनत करता है किंतु आज वह चार ही पेड़ काट पाया। पहले दिन से अभी तक पेड़ समान थे किन्तु फिर क्या कारण हुआ कि पहले दिन 6 फिर 5 फिर 4 ही काट पाया, अगले दिन वह काम पर आता तो है पर उत्साह कम होता चला जा रहा, मेहनत बढ़ाता जा रहा है उसके बावजूद भी बड़ी मुश्किल से तीन पेड़ काट पाया। अगले दिन बहुत मुश्किल से प्रातः 4 बजे जाकर के रात्रि 9-10 बजे तक काम करता है तब भी दो पेड़ काट पाता है वह उदास होता चला जा रहा है। श्रम ज्यादा हो रहा है उसके बावजूद भी फल कम आ रहा है। यदि इनपुट ज्यादा आउटपुट कम हो तो व्यापारी व्यापार बंद कर देता है।

एक भले व्यक्ति ने उससे कहा मेरी बात सुन-वह बोला मेरे पास समय नहीं, अरे भाई! सुन तो सही-तूने पहले दिन 6 पेड़ काटे फिर 5-4-3-2 और कल तू जायेगा तो मुश्किल से एक ही पेड़ काट पायेगा वो भी काट पाये तो, इसीलिये तू मेरी बात सुन, यदि तू मेरी बात सुनेगा तो कल 6 की बजाय 8 पेड़ काट पायेगा। वह बोला जल्दी बताइए, ऐसी क्या बात है? बात ये है कि तेरी कुल्हाड़ी मोथरी हो गयी है, इस कुल्हाड़ी को पहले पैना कर ले, फिर उत्साह के साथ काम करेगा तो एक दिन में तू आठ पेड़ काट सकता है। वह कहता है मेरे पास समय नहीं है कुल्हाड़ी पैनी करने के लिये। तो भैया! जब कुल्हाड़ी पैनी करने के लिये समय नहीं है तो तेरे समय का दुरुपयोग हो रहा है, सदुपयोग नहीं।

महानुभाव! ऐसी ही हमारी जिंदगी है, हमारी जिंदगी में जब उत्साह, आनंद व रस नहीं होता, उल्लास-उमंग नहीं होती, जब बोझ से कार्य करते हैं तो कार्य हो नहीं पाता उससे पहले थकान चढ़ जाती है और जब हर्षातिरेक में कोई काम करते हैं तो वह कार्य करते-करते भी थकान नहीं आती। माता बहिनों से कहो कि महाराज जी का चौका

लगाना है, तो उनका स्वास्थ्य खराब भी होगा तो ठीक हो जायेगा, चौका लगाने के नाम से ठीक हो जायेगा और यदि पतिदेव कह दें मेरे भईया आ रहे हैं तुम्हें अपने जेठ जी के लिये या देवर-ननदों के लिये अच्छी सी रसोई तैयार करनी है तो वह कहती है मेरे सिर में दर्द हो रहा है मेरे बस का नहीं है। समझ नहीं आता जब आहार की बात, चौका लगाने की बात कहो तो बुखार 100 से ऊपर हो तब भी दौड़-दौड़ कर काम कर लेते हो, एक-एक दिन में 10-10 साधुओं के आहार करा दिये तब वह उत्साह कहाँ से आ गया। बात ये है कि जब मन से काम करते हैं तो बीमारी भाग जाती है, मन से काम करते हैं तो थकान नहीं आती वरन् शक्ति अंदर से ही आती है, मन भी शक्ति देता है। ये मन एक जनरेटर है, मनोबल जब बढ़ता चला जाता है तो फिर तनबल कभी कम नहीं होता। जो आत्मबली होता है वह जीवन में कभी हिम्मत नहीं हारता।

उस व्यक्ति ने अपनी कुल्हाड़ी को पैना कर लिया, और वास्तव में जब अगले दिन गया तो उसने आठ पेड़ काट दिये। महानुभाव! इसी तरह से हम अपनी जिंदगी से हताश-उदास-निराश होने लगते हैं, हमारी जिंदगी जब नीरस होने लगती है तो जिंदगी में कोई स्वाद नहीं आता। केवल रोटी खाते-खाते जीवन में आनंद नहीं आता, केवल अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनने से जीवन में आनंद नहीं आता और केवल अच्छे भवन में रहने से जीवन में आनंद नहीं आता, बहुत से नौकर वाहन बैंक-बैलेंस होने से जिंदगी में आनंद नहीं आता। जिंदगी के आनंद का, उसको चार्ज करने का एक उपाय है जिसके बिना उसकी जिंदगी नीरस है, चार्जहीन है वह है 'प्रेम'।

यदि जीवन में प्रेम और वात्सल्य है तो जिंदगी चमक उठती है, आनंद से भर जाती है। चाहे पशु पक्षी भी हो यदि उसे प्रेम दिखाते हो तो प्रेम के साथ उसके जीवन में उत्साह आता है और मैं समझता हूँ कोई भी इंसान बिना प्रेम के सकुशल जिंदगी जी नहीं सकता, बिना वात्सल्य भक्ति के कोई जिंदगी जी नहीं सकता, उसकी जिंदगी भार बन जाती है।

हम चाहते हैं प्रेम हमें मिले, हम तो बनिया बुद्धि से काम करते हैं लेना जानते हैं देना नहीं जानते किंतु बात ये है कि प्रेम का गणित विश्व का एक ऐसा गणित है जो सिर्फ देना ही देना जानता है लेना नहीं जानता, देते हुये आनंद की अनुभूति होती है और जब हम निःस्वार्थ, बेशर्त देना जानते हैं तब हम पर बरबस प्रेम की वर्षा होती है।

नारी प्रेम में जीती है, वह समर्पण करती है, उसके प्रेम को जो स्वीकृत कर ले तो वह नारी स्वयं को धन्यभागी समझती है, ऐसा समझती है जैसे स्वर्गीय आनंद की अनुभूति हो गयी, और कोई उसके प्रेम को ठुकरा दे तो उसका जीवन ऐसा लगता है कि नारकीय तुल्य हो गया। ऐसे ही पुरुष चाहे वह घर का सेवक भी है यदि उसे भी प्रेम वात्सल्य दिया जाता है तो वह सेवक अपने शक्ति से दूना काम कर सकता है। उसे तनख्वा जितनी देते हो उतनी ही दो किंतु प्रेम और वात्सल्य के साथ दो शब्द भी बोल लो। तुम्हारे घर के जितने भी सदस्य हैं यदि आपस में प्रेम का व्यवहार है तो आपका वह घर स्वर्ग जैसा है। किसी व्यक्ति को चाहे कितने भी रुपये दे दो, गिफ्ट दे दो और प्रेम नहीं दे पाये तो तुमने कुछ भी नहीं दिया। भगवान् के सामने चाहे थाल भर-भर के द्रव्य चढ़ाओ, चाहे रत्नों के थाल चढ़ाओ, चाहे सोने चाँदी के फूल चढ़ाओ जब तक तुमने भगवान् के सामने अपना मन नहीं चढ़ाया, भगवान् को अपना हृदय समर्पित नहीं किया, अपने आप को भगवान् के सामने नहीं चढ़ाया, भगवान् की भक्ति में आनंद नहीं आया तो वह पूजा और भक्ति केवल शरीर की क्रिया है।

महानुभाव! प्रेम की भाषा को पशु-पक्षी तो ठीक है, वृक्ष भी जानते हैं। कोई नारी जब किसी वृक्ष का जल सिंचन करती है, सौभाग्यवती स्त्री यदि किसी वृक्ष में प्रेमयुक्त भावना से जल सिंचन करती है तो वैज्ञानिक लोग भी स्वीकार करते हैं कि उस वृक्ष पर फल-पुण्य ज्यादा आते हैं, वृक्ष हरा-भरा हो जाता है और यदि कोई

क्रूर व्यक्ति हाथ में कुल्हाड़ी लेकर उस वृक्ष को डराये कि मैं तुझे काटूँगा-तुझे छोडूँगा नहीं फिर पानी डाल दे तो पेड़ हरा-भरा नहीं होगा सूख जायेगा। तो प्रेम एक ऐसा चार्जर है जिससे जिंदगी को चार्ज किया जाता है। वर्तमान काल के युग में प्रेम की लाइट कम आ रही है। विद्युतविभाग वाले बाहर की लाइट तो बहुत दे रहे हैं, पूरे मकान को रोशन कर दिया किन्तु अपने चित्त में अंधेरा पड़ा है यहाँ तक कि एक दम्पत्ति भी अपने बच्चों को प्रेम नहीं दे पा रहे, जिंदगी इतनी व्यस्त हो गयी कि अपने बच्चों से 24 घंटे में से 24 मिनट भी बात नहीं कर पा रहे, बच्चों के पास इतना काम फैल गया है कि अपने वृद्ध माता-पिता के पास दो मिनट बैठकर प्रेम से चर्चा नहीं कर पा रहे हैं। सब कुछ चल रहा है यंत्रवत् यदि कहीं कुछ निकल गया है तो प्रेम का विद्युत निकल गया है जिससे जिंदगी प्रायःकर नीरस होती चली जा रही है।

जिन दो भाईयों में प्रेम है वो कहते हैं, हम एक और एक ग्यारह हैं, दुनिया से हमें क्या लेना-देना हम आपस में प्रेम आनंद से जीते हैं। यदि तीन भाई हैं तो एक सौ ग्यारह हैं, चार हैं तो एक हजार एक सौ ग्यारह हैं यदि वे अलग-अलग हैं तो कोई मजबूत नहीं है। प्रेम और वात्सल्य के धागे में बँधा हुआ कोई भी इंसान तुम्हें कभी छोड़ नहीं सकता और अन्य प्रकार से यदि दूसरों को बाँधने की कोशिश करते हो तो वह शरीर से भले ही बाँध लिया जाये उसके मन को नहीं बाँधा जा सकता। यदि किसी व्यक्ति से ज्यादा काम लेना है तो उसे प्रेम और वात्सल्य देकर चार्ज करो, उसकी आत्मा को आनंदित करो प्रफुल्लित करो देखना उसकी कार्य क्षमता बढ़ जायेगी।

महानुभाव! ये कमी आती जा रही है हमारी समाज में कि माता-पिता का स्वभाव चिड़चिड़ा होता जा रहा है, उनके पास समय नहीं है बच्चों की बात सुनने का। बेटा पहले दिन आया, स्कूल की पूरी बात माँ को बताना चाहता है, माँ सुन नहीं रही, वह पीछे-पीछे दौड़ रहा है,

आज ऐसा हुआ, मैंने ये किया वो किया पर माँ सुन नहीं रही। ऐसा एक बार-दो बार-चार बार हुआ बेटा माँ के पीछे-पीछे दौड़ रहा है पिता के पास जाता है तो पिता भी यही कह देते हैं बेटा मेरे पास समय नहीं है उसकी न माँ से बात हुयी न पिता से बात हुयी, दो चार साल हुये, बेटे ने धीमे-धीमे अपनी बात कहना कम किया और एक दिन ऐसा हुआ कि माँ बेटे से पूछ रही है, बेटा क्या हुआ? उदास क्यों है। पहले समय था जब बेटा माता-पिता के पीछे-पीछे दौड़ रहा था अब समय ऐसा हो गया कि बेटा मुँह नहीं खोल रहा। क्यों? क्योंकि अब वह अपनी बात उनसे शेयर नहीं करना चाहता, वह अपनी बात को उससे शेयर करना चाहता है जो उससे प्रेम और वात्सल्य से बोलता है।

घर कहाँ से बिगड़ते हैं, घर यहीं से बिगड़ते हैं सबसे पहले भूल यहीं से हो जाती है कि माता-पिता पहले बच्चे को बच्चा समझते हैं, छोटी गलती हो जाये सही भी बोलता है तब भी डाँट पड़ती है, झूठ बोल देता है तो डाँट नहीं पड़ती। उसे झूठ बोलने पर सहानुभूति मिलती है, सत्य बोलने पर डाँट पड़ती है। बालक इतना गणित लगाता है कि मैं डाँट क्यों खाऊँ, स्कूल जाओ झूठ बोलो तो सहानुभूति मिलेगी, वह सोचता है मैं माता-पिता से कहता हूँ तो मेरी उपेक्षा होती है इसीलिये कहना बंद, जो मेरी बात को ध्यान से सुनता है उससे कहना प्रारंभ हो गया। घर-परिवार में बच्चों को प्यार मिलता रहे तो उनका जीवन चार्ज होता रहेगा, वो ये मान लें कि तुम्हारे बिना उनके जीवन की मशीन चार्ज नहीं हो सकती, तो वे तुम्हें जीवन भर छोड़ नहीं सकते।

महानुभाव! जिस दिन उन्हें यह अहसास हो जायेगा कि माता-पिता के बिना भी मेरी जिंदगी चार्ज होती रहेगी उस दिन वे तुम्हारे पास आने की कोशिश नहीं करेंगे। इसीलिये बच्चों को इतना दूर मत रखो कि वे तुम्हारे बिना रहना सीख जायें, जिस दिन वे तुम्हारे बिना रहना सीख जायेंगे उस दिन से उन्हें तुम्हारी आवश्यकता नहीं होगी किंतु उस समय तुम्हें उनकी आवश्यकता होगी। जब तुम्हें उनकी आवश्यकता होगी तब वे तुम्हारे पास नहीं आयेंगे क्योंकि जब उन्हें तुम्हारी आवश्यकता थी तब

तुम भी उनके पास नहीं बैठे थे। तुम उस समय अपने काम में व्यस्त थे, तुमने बच्चों के लिये समय दिया ही कब था? उनकी मशीन कहाँ से चार्ज हुयी है? उन्हें कहाँ से पॉवर मिला है, जहाँ से मिला है वह यंत्र फिर वहीं का होकर रह जाता है।

इसीलिये जिंदगी को चार्ज करना बहुत जरूरी है यदि जिंदगी चार्ज नहीं करेंगे तो मोथरी कुल्हाड़ी की तरह से हमारी जिंदगी भी मोथरी हो जायेगी, उससे कोई कार्य सिद्ध न होगा, फिर जिंदगी से आप ऊब जायेंगे, हताश हो जायेंगे और हो सकता है आपके मन में अन्य दुर्भाव भी आ जाये कि ऐसी जिंदगी से तो.....?(मैं अपने मुख से क्यों कहूँ) लोग ऐसा सोचते ही नहीं वरन् पाश्चात्य देशों में तो ऐसा कर ही लेते हैं इसीलिये आप अपनी जिंदगी को चार्ज करते रहो। जिसकी जिंदगी चार्ज है वह दूसरे की जिंदगी भी चार्ज कर सकता है। यदि आपका लैपटॉप चार्ज है और वहाँ कोई सर्किट नहीं है तो फिर लैपटॉप से अपने मोबाइल को चार्ज कर सकते हो। तुम चार्ज हो तो दूसरे को भी चार्ज कर सकते हो। पॉवर बैंक रखकर तुम मोबाइल आदि चार्ज कर सकते हो किंतु तुम्हारे पास क्या साधन है?

जिनेन्द्र भगवान् के माध्यम से तुम्हारी जिंदगी चार्ज हो सकती है। यह शाश्वत पॉवर हाउस है जहाँ कभी भी इलेक्ट्रिसिटी की कमी नहीं होती, जब जाओ तब तुम्हारी जिंदगी वहाँ चार्ज हो गयी और एक पॉवर बैंक है जो 'गुरु' के नाम से जाना जाता है यहाँ पहुँचकर भी आपकी जिंदगी चार्ज हो सकती है और पुनः चाहें तो घर में अपने वृद्ध माता-पिता के पास बैठो यदि माता-पिता सकारात्मक सोच आपको दें तो आपकी जिंदगी चार्ज हो सकती है। यदि वे उल्टी बातें सिखायें (कि बड़े भाई के पास मत जाना, उसने संपत्ति ज्यादा ले ली, ऐसा मत करना, ज्यादा बात मत करना) यदि घर के बड़े ही उल्टी शिक्षा देंगे तो ध्यान रखना वे स्वयं अपने लिये कुआं खोद रहे हैं आज नहीं

तो कल वे उसी में गिरेंगे। इसीलिये कभी भी किसी को गलत शिक्षा मत देना, सही शिक्षा देना, तुम्हारी सही शिक्षा तुम्हारे लिये ही काम आयेगी, दूसरों के काम नहीं, जो दूसरो के लिये कुआं खोदता है उसमें स्वयं को गिरना पड़ता है।

तो महानुभाव! जिंदगी को चार्ज करने के लिये प्रेम और वात्सल्य की महती आवश्यकता है, जिंदगी को चार्ज करने के लिये देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करना बहुत आवश्यक है। जिंदगी को चार्ज करने के लिये तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा करने की आवश्यकता है क्योंकि वहाँ का वातावरण बिल्कुल अलग होता है और अपने मन में जो भी गांठे पड़ी हैं, जो भी तनाव के कारण हैं वहाँ जाकर के मन फ्रैश होता है वहाँ के वातावरण में मन झूमने लगता है, संक्लेशता कम होती है। ज्यों ही अपने घर लौटता है तो पुनः उसी वातावरण में रम जाता है। तो जिंदगी को डिस्चार्ज न होने दें, निरन्तर उसको चार्ज करते रहें, नितप्रति भगवान् के चरणों में माथा झुका करके अपनी जिंदगी को चार्ज करें। नित्य-नित्य गुरुओं की सेवा करके जिंदगी को चार्ज करें, नित्य-नित्य दूसरों पर प्रेम बेशर्त लुटायें।

ध्यान रखना प्रेम की दौलत ऐसी है जितना लुटाओ उतना बढ़ती जाती है न लुटाओ तो सड़ जाती है। जैसे सरस्वती के भण्डार के लिये कहते हैं ज्ञान जितना बाँटो उतना बढ़ता चला जाता है। वह तो शब्द ज्ञान है जो बाँटा जा सकता है, लिया-दिया जा सकता है, भाव ज्ञान को न दे सकते हैं न ले सकते हैं। किंतु प्रेम की भाषा मौन होती है जितना लुटाते जाते हैं जो लूटने वाला है उसे आनंद आये या न आये किंतु लुटाने वाले को बहुत आनंद आता है। एक माँ अपने बेटे को स्नेह वात्सल्य को देकर के जिस स्वर्गीय आनंद का अनुभव करती है वह आनंद उसे प्रेम प्राप्त होने पर भी नहीं आता, ऐसे ही जो व्यक्ति स्वयं बेशर्त के देता है, सबसे प्रेम और मधुर व्यवहार, नम्रता का व्यवहार करता है उसके साथ स्वयमेव वैसा व्यवहार होता है।

आपको एक बात बतायें, हाथ जोड़ना दुनिया को जोड़ने का कारण है, जब तक हाथ नीचे लटके या बँधे रहते हैं तब तक दुनिया को जोड़ नहीं सकते, जो व्यक्ति बाँहे फैलाकर बाँहे जोड़ता है तो एक ही व्यक्ति को जोड़ सकता है, अपनी बाँहु में केवल एक व्यक्ति को बाँध सकता है वह भी अपने से कमजोर को, बलवान होगा तो बाहुओं से छूटकर भाग जायेगा किन्तु जो व्यक्ति अपने दोनों हाथ जोड़ सकता है, वह पूरी दुनिया को जोड़ सकता है। जिसके पास केवल हाथ जोड़ने की कला है वह दुनिया में कहीं भी पहुँच जाये वह किसी को भी जोड़ सकता है, शत्रु को भी मित्र बना सकता है। हाथ जोड़ने की कला, अंदर से नि:स्वार्थ प्रेम देने की कला, वात्सल्य की कला, समर्पण की कला ये हमारे जीवन को सफल और सार्थक करने की कलायें हैं।

महानुभाव! हम अपने जीवन को यदि आनंदमय बनाना चाहते हैं तो अपने जीवन के आनंद को बाँटना प्रारंभ करें। हमारे पास जो सुख-शांति, आनंद, अमन-चैन है उसे छिपा कर ना रखें क्योंकि ये आनंद का पुण्य, आनंद का वृक्ष एक ऐसा पुष्पित वृक्ष है जिसे ढाँक करके रखेंगे तो ये पौधा मुरझा जायेगा, सूख जायेगा। ये पुण्य जब अपनी गंध बाहर बिखेरेंगे उतने पुण्य और सुगंधित होते चले जायेंगे। पुण्य को यदि डिब्बी में बंद करके रख दिया तो वह मुरझा जायेगा उसकी गंध सुगंध न रहकर के बदबू बन जायेगी।

बस केवल अपनी दृष्टि को बदलना है, आपके हाथ में ताला है, चाबी है। आपने जिद कर ली है कि मैं चाबी को उल्टा घुमाकर ही ताला खोलूँगा, केवल आप हमारी इतनी सी बात मान लें कि जो चाबी अभी तक उल्टी घुमायी है, अब उसे एक बार सीधी घुमा दें तो आपका ताला एक सैकेंड में खुल जायेगा। ताला उसी चाबी से लगा है, उसी चाबी से खुलेगा। जीवन में जहाँ-जहाँ से प्रतिरोध आते हैं, जहाँ-जहाँ से प्रतिकूलता आती हैं, जहाँ-जहाँ से जीवन में दु:ख और

अशांति आती है, जहाँ-जहाँ से संक्लेशता आती है संभव है वहीं-वहीं से सुख-शांति का मार्ग भी खुलता है। आत्मा में जिन द्वारों से कर्मों का आश्रव होता है, उन्हीं द्वारों को बंद करने से संवर हो जाता है। रास्ते में जो पत्थर आपको ठोकर देते हैं उन्हीं पत्थरों को यदि साइड कर, रोड बना लो, सीढ़ी बना लो तो वे पत्थर ही आपको ऊपर चढ़ने के काम आ सकते हैं।

महानुभाव! बस थोड़ी सी अपनी मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को बदलना है। इतना बदलते ही हमारी जिंदगी नि:संदेह बहुत चार्ज हो जायेगी और चार्ज हुयी जिंदगी हमारे लिये भी सुखद होगी और दूसरों के लिये भी वरदान स्वरूप हो जायेगी। एक बात और ध्यान रखें जिसकी जिंदगी चार्ज होती रहती है उसकी जिंदगी दीर्घ हो जाती है, जिस गाड़ी को प्रतिदिन चलाते रहेंगे तो हो सकता है वह गाड़ी 20-30 साल चल जाये और जिस गाड़ी को गैरिज में लाकर रख दिया, नहीं चलायें तो साल दो साल में खराब हो जायेगी। हमारी आत्मा में स्नेह-प्रेम-वात्सल्य, उपकार, सहयोग, भाईचारा, मैत्री, कारुण्य इत्यादि भावनायें हैं इन भावनाओं को बार-बार जनरेट करते रहेंगे, बार-बार लुटाते रहेंगे तो हमारी जिंदगी आनंदित होती रहेगी।

यदि किसी वृक्ष पर पुण्य लगते रहेंगे तो वृक्ष कभी सूखेगा नहीं। वह वृक्ष सोचे कि मैं अपनी शक्ति को संग्रहित करके रख लूँ, इस वृक्ष में पुण्य न खिलाऊँ, फल न आने दूँ, तो वह वृक्ष सूख जायेगा। जिस वृक्ष पर पुण्य खिलते रहते हैं, फल लगते रहते हैं वह वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होता रहता है ऐसे ही हम और आप अपने आत्मीय गुणों का जितना विकास करेंगे और दूसरों के आत्मीय गुणों को प्रकट करने के लिये निमित्त कारण बनेंगे तब नि:संदेह हमारा जीवन दीर्घजीवी तो होगा ही होगा इसके साथ-साथ सुख और शांति से परिपूरित भी होगा।

महानुभाव! इस जिंदगी को चार्ज करना है, अब आप चाहे जहाँ

से चार्ज कर लें। आप कहेंगे महाराज श्री! आपका चार्जर क्या है? यदि आप जंगल में हैं आपको भगवान् नहीं मिले, आपके गुरु महाराज आपसे दूर कुंद-कुंद भारती में हैं वे आपको नहीं मिले तब आप कहाँ से चार्ज करते हैं? हम वहीं से चार्ज करते हैं जहाँ पर जिस माहौल में रहते हैं हम अपने गुरुभाईयों से या शिष्यों से या भक्तों के बीच बैठकर के भी जब अंतरंग से प्रेम और वात्सल्य लुटाते हैं तो वह 100 गुना होकर के हमारे पास लौटकर के आ जाता है तो हमारा जीवन भी चार्ज हो जाता है, यदि हम लुटाना बंद कर दें तो हमारा जीवन भी हम पर भार हो जायेगा, हम बोझ को वहन नहीं कर पायेंगे। बेशर्त से लुटाओ तो निस्सीम मात्रा में पाओगे। जो शर्त के साथ लुटाता है वह शर्त के साथ ही प्राप्त कर पाता है, यदि प्राप्त कर ले तो, अन्यथा वह प्राप्त न भी कर पाये ऐसा भी हो सकता है।

इसीलिये महानुभाव! अपने जीवन को समुचित साधनों से सम्यक् प्रकार से चार्ज करने का प्रयास व पुरुषार्थ करें, सभी के साथ प्रेम-वात्सल्य का व्यवहर बनाकर रखें और अपने जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवेश करायें, नकारात्मक ऊर्जा आपके अंदर की ऊर्जा को खा जाती है जैसे बुभुक्षित पारा स्वर्ण-चाँदी आदि को खा जाता है और सकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक ऊर्जा को नष्ट करके उस नकारात्मक ऊर्जा को भी सकारात्मक बना देती है जैसे सूर्य का उदय होते ही अंधकार के परमाणु प्रकाशमय बन जाते हैं, अंधकार होते ही प्रकाशमय परमाणु अंधकारमय हो जाते हैं। तो सकारात्मकता का सूर्य आपके जीवन में उदित हो जिससे आपका जीवन और आप सकारात्मक ऊर्जा से भरते चले जायेंगे। जो आपके पास बैठेगा उसे भी अच्छा ही लगेगा। आपके जीवन में सुख-शांति की फुल चार्जिंग हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ।

''जैनम् जयतु शासनम्''

''नेतृत्व के सूत्र''

महानुभाव! मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसीलिये उसे समाज में रहते हुये समाज के नीति-नियम और रीतियों को पालन करना भी आवश्यक होता है। यूँ तो पशु-पक्षियों में भी कुछ नियम बनाये जाते हैं किन्तु वे नियम तब तक ही चल पाते हैं जब तक चित्त में सरलता और सादगी रहती है। कोई बलवान् पशु अपनी शक्ति के आवेग में आकर के नियम का उल्लंघन भी कर दे तब निर्बल पशु उसका प्रतिकार करके उसे अलग नहीं कर सकता। किन्तु समाज में ऐसी व्यवस्था होती है जो नियम समाज में निर्धारित होते हैं उनका पालन समाज के प्राणियों द्वारा किया जाता है। कुछ नियम लोक व्यवहार के अनुसार होते हैं, कुछ नियम मर्यादा की रक्षा करने के लिये होते हैं, कुछ नियम संस्कृति का संवर्धन-संरक्षण और जीर्णोद्धार करने से संबंधित होते हैं तो कोई नियम सभ्यता के साँचे में ढले हुये होते हैं।

इन सभी नियमों से मानव का जीवन वैसे ही सुशोभित होता है जैसे कोई नारी श्रृंगार व आभूषणों से शोभायमान होती है, जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभा को प्राप्त करता है, जैसे कोई सरिता पूर्ण सलिल से युक्त होकर शोभा को प्राप्त होती है। जैसे कोई रत्न अपनी पूर्णकांति से युक्त होने पर शोभा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार एक सामाजिक प्राणी जब मर्यादा का पालन करता है, रीति और नीति का पालन करता है, धर्म का अविनाभावी जो समाज का अनुशासन है उसका पालन करता है तब नि:संदेह समाज न केवल सुरक्षित और संरक्षित होता है अपितु संवर्धित भी होता है। उस समाज में सुख-शांति, समृद्धि-खुशहाली उसी प्रकार रहती है जैसे नदी के किनारे पर हरियाली रहती है।

महानुभाव! समाज सभ्य और शिष्ट व्यक्तियों के समूह का नाम है। किसी भी समाज का संचालन करने के लिये एक नेतृत्व से युक्त क्षमता वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है। यदि किसी भी समाज में,

किसी भी संस्थान में, किसी भी संस्था-समिति में या घर-परिवार में एक व्यक्ति मुख्य नहीं होता है तब पुनः समीचीन संचालन नहीं हो पाता। एक व्यक्ति यदि समीचीन संचालन करने वाला है तब उस संस्था आदि का सम्यक् संचालन होता है, कोई नहीं है तब भी संस्था बिखर जायेगी, सभी बन जायेंगे तब भी संस्था न चल पायेगी। नीतिकार कहते हैं-

अनायका विनश्यन्ति, विनश्यन्ति बहु नायका ।
स्त्री नायिका विनश्यन्ति, विनश्यन्ति बाल नायकाः ॥

यदि किसी समूह का कोई एक लीडर नहीं है तो वह समूह सकुशल अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच पाता, यदि उस समूह में सभी ही नेता बन जायें तब भी समूह की सकुशलता नहीं है, यदि समूह में स्त्री बुद्धि का धारक नेतृत्व करने लग जाये तब भी समीचीन नेतृत्व नहीं कर सकता और यदि बाल बुद्धि का धारक नेतृत्व करे तब भी वह सम्यक् नेतृत्व करने में असमर्थ ही रहेगा। चार बातें बतायी, पहली बात यदि कोई नायक नहीं है, जैसे पहले विवाह आदि के पत्र आते थे तो पत्र पर पूरे परिवार का नाम नहीं आता था सिर्फ मुखिया का नाम आता था, यदि कहीं स्नेह भोज में जाना है और सकल का निमंत्रण नहीं है तो मुखिया के नाम से निमंत्रण होता था। यदि और भी कोई जिम्मेदारी की बात है तो मुखिया ही वहन करता है, तो मुखिया का घर में भी होना जरूरी है। शरीर में भी मुख मुखिया की तरह से होता है और मुखिया कैसा हो उसके लिये कवि महोदय लिखते हैं-

मुखिया मुख सो चाहिये, खान-पान को एक ।
पाले पोसे सकल जग, तुलसी सहज विवेक ॥

तुलसीदास जी कहते हैं जैसे मुख अन्नपान आदि खाद्य-पेय पदार्थों को ग्रहण करता है, किन्तु ग्रहण कर कंठ तक नहीं रखता वरन् उदर में पहुँचाता है, जठराग्नि उस भोजन को पचाने का काम करती है पचने के उपरांत यह भोजन सप्तधातु-उपधातु में परिवर्तित हो जाता है, इसका अंश पूरे शरीर में पहुँच जाता है, पूरे शरीर की समृद्धि उस भोजन के

करने से होती है। भोजन ग्रहण तो किया मुख ने किन्तु पोषण हुआ पूरे शरीर का। ऐसे ही कोई मुखिया होता है वह केवल एक दिखाई देता है किन्तु वह सम्पूर्ण का हित सोचकर ही कार्य करता है।

महानुभाव! यदि बहुत नायक हो जायें, बहुत नेता या मुखिया हो जायें तब कौन किसकी बात माने, कोई किसी की बात नहीं मानेगा, फिर तो ऐसा लगेगा जैसे सभी अनुत्तर विमानवासी हो गये हों, अनुदिश वासी हो गये हों क्योंकि वहाँ सब अहमिन्द्र ही अहमिन्द्र हैं। प्रत्येक अहमिन्द्र है, इसीलिये वहाँ कोई शासन व्यवस्था नहीं है सब एक बराबर। स्वर्गों में शासन व्यवस्था है, इन्द्र भी होता है, प्रतीन्द्र भी होता है, सामानिक देव भी होते हैं, त्रायस्त्रिंश भी होते हैं, सभासद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, आभियोग्य, प्रकीर्णक, किल्विषिक आदि जाति के देव होते हैं।

जहाँ पर विविधता है वहाँ पर मुखिया का होना जरूरी है जहाँ पर समानता है वहाँ पर नेतृत्व करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि सब अपने आप में समान हैं, किसी भी अहमिन्द्र को किसी भी अहमिन्द्र से कोई आवश्यकता नहीं सब बराबर हैं किन्तु स्वर्गों में इन्द्र आदि की व्यवस्था है। ऐसे ही मनुष्यों में भी कोई राजा होता है, कोई युवराज होता है, कोई महाअमात्य होता है, कोई सेनापित, पुरोहित तो कोई मंत्री-प्रधनमंत्री होता है, कोई कोतवाल होता है, कोई सामान्यसैनिक,कोई श्रेष्ठी-नगर श्रेष्ठी आदि सबके अपने अलग-अलग पद होते हैं और सबके अपने अलग-अलग कार्य होते हैं। यदि ये अलग-अलग पद व्यवस्था न हो, अलग-अलग कार्यव्यवस्था न हो तो किसी भी राजा का राज्य सकुशल संचालित न हो सकेगा। यदि कोई अपराध करता है तो अलग से दण्डाधिकारी भी नियुक्त किया जाता है।

वर्तमान काल में डेमोक्रेसी है, प्रजातंत्र है इसमें भी सब व्यवस्था अलग-अलग हैं। भारत देश में रक्षा का भार देश की सीमा पर तत्पर सैनिकों पर है, देश की अंतरंग सुरक्षा का भार व अन्य व्यवस्थायें चाहे शिक्षण का हो, वित्त का हो, कृषि का हो, खेल का हो, परिवहन का

हो, सब प्रकार के अलग-अलग मिनिस्टर बना दिये जाते हैं जिससे व्यवस्था सकुशल सुचारूरूप से संचालित रहे। हमारे शरीर में भी जो अंग होते हैं वह अंग अपने-अपने कार्य को करते हैं। इन्द्रियाँ भी हैं, एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय का काम नहीं करती सब अपना-अपना काम करती हैं। कर्ण इन्द्रिय का कार्य सुनने का है वह सुनेगी, देखेगी नहीं, सूँघेगी नहीं, चखेगी नहीं इस प्रकार सभी की व्यवस्थायें नियत होती हैं सब अपने कार्य में दत्त चित्त रहते हैं तब व्यवस्था अपने आप सुचारू रूप से संचालित रहती है।

महानुभाव! इसीलिये समाज में आवश्यकता है नायक की। वह बाल भी न हो और स्त्री भी न हो। स्त्री से आशय भावुक स्वभाव वाला न हो क्षणभर में आग बबूला हो जायें और क्षण भर में पानी-पानी हो जायें। एक क्षण पहले ऐसा भाव आ जाये कि सामने वाले को देखना पसंद न करे, ऐसा भाव मन में आ जाये कि जीवित ही न रहें और दूसरे क्षण में ऐसा भाव भी हो सकता है कि इसके प्राणों की रक्षा करने के लिये मैं अपने प्राणों की आहूति भी दे दूँ। इतनी चपलता नदी जैसी चंचलता, भावुकता ये स्त्री जैसे कोमल हृदय में ही संभव है, इसीलिए कोमल हृदय से राज्य का संचालन नहीं होता, स्त्री जैसे स्वभाव वाला व्यक्ति नेतृत्व करने में अक्षम होता है। बालबुद्धि वाला व्यक्ति जो बिना विवेक की क्रिया करे जैसा मन में आया वैसा करे मूढ़ी स्वभाव का हो तो वह भी कुशल संचालक नहीं हो सकता, वह भी नेतृत्व करने में अक्षम होता है।

महानुभाव! फिर कुशल नेतृत्व करने वाला व्यक्ति कैसा होना चाहिये? क्योंकि समाज में रहते हुये, किसी संस्था में रहते हुये, अपने घर में रहते हुये, किसी साधु समुदाय में भी आचार्य-उपाध्याय या ज्येष्ठ मुनिराज होते हैं सभी में कोई न कोई लीडर होता है तो उसमें कौन-कौन से गुण होना चाहिये? नेतृत्व क्षमता का विकास कैसे हो? वह कैसे प्रकट हो? क्योंकि सभी अपनी-अपनी जगह नेतृत्व कर रहे

हैं। सभी नेतृत्व करने वाले कुशल हों, सफल हों ऐसा भी जरूरी नहीं है किन्तु कुशल नेतृत्व करने वाले में जो गुण होते हैं उनसे सफलता अवश्यम्भावी होती है और उसके शासन में रहने वाले सुखी व संतुष्ट होते हैं।

नेतृत्व के लिये पहला गुण है **'आत्मानुशासक'** नेता वही बन सकता है जो स्वयं पर अनुशासन कर सके। चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, अपने पर जो अंकुश लगा सकता है वह दूसरों का नेतृत्व करने में सफल हो सकता है। जो अपने आप पर नियंत्रण नहीं कर सकता वह दूसरों को नियंत्रण करने चलेगा तो सामने वाला कोई कह सकता है कि पहले अपने आप पर तो नियंत्रण करो। डा. सर्वपल्ली राधाकृष्ण ने लिखा है कि नेतृत्व क्षमता वाले व्यक्ति में आत्मानुशासन की शक्ति और बाह्य में संयम होना चाहिये। वाणी का संयम, काया का संयम, मन का संयम होना चाहिये वही व्यक्ति नेतृत्व करने में सफल हो सकता है। जो अपनी वाणी पर, विचारों पर व शरीर की चेष्टाओं पर संयम नहीं रख सकता वह अगर नेतृत्व करने का प्रयास भी करेगा तो भी सफल नही हो सकता। आत्मानुशासक होता है उस पर किसी को शासन करने की आवश्यकता नहीं होती, उसके अनुशासन में सभी रहना चाहते हैं और जो स्वयं अनुशासित नही है तब कोई व्यक्ति उसके अनुशासन में नहीं रहना चाहेगा।

अनुशासन सब प्रकार का जरूरी है चाहे समय की पाबंदी का अनुशासन हो, चाहे कार्यक्षमता का अनुशासन हो, अतिरेक भी नहीं, न्यून भी नहीं। चाहे वचनालाप का अनुशासन हो, चाहे व्यवहारिकता का अनुशासन हो सब जगह अनुशासन हो। जो स्वयं को अनुशासित कर सके वही वास्तव में नेतृत्व क्षमता से युक्त होता है। यदि अंधा व्यक्ति अंधों का नेतृत्व करेगा तो ये सुनिश्चित है कि किसी खाई में किसी का गिर जाना। यदि ऐसा कोई व्यक्ति नेतृत्व करे जो निराशता का शिकार जल्दी हो जाता है, हताश-उदास हो जाता है तब वह अपने

समूह को लीड करने में सफल और सक्षम न हो सकेगा। नेतृत्व करने वाला अदम्य साहसी और आत्म-विश्वासी हो किसी भी स्थिति में घबराये नहीं, किसी भी परिस्थिति में निर्णय लेना जानता हो, उसका विवेक ऐसा जाग्रत रहे कि सामने कोई भी स्थिति आ जाये वह तत्काल निर्णय लेने की क्षमता रखने वाला हो। यदि वह सोचे कि किससे पूछूँ, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ इस प्रकार घबरा जायेगा तो निर्णय न ले पायेगा और नेतृत्व आगे न कर पायेगा।

नेतृत्व करने वाला व्यक्ति तो वह है जो स्वयं रास्ता बनाता है, उस रास्ते पर चलता है और दूसरों को चलने की प्रेरणा देता है ऐसा व्यक्ति ही नेतृत्व करने का सही अधिकारी होता है। जो रास्ता बना नहीं सकता, बने बनाये रास्ते पर चल रहा है तो लोग कहेंगे इसमें तुमने कौन सी सफलता का काम कर लिया, बने रास्ते पर तो कोई भी चल सकता है, लाठी टेकता हुआ अंधा भी जा सकता है। खूबी तो तब है जब रास्ता नहीं था, वहाँ पर रास्ता बनाकर स्वयं चलकर आप वहाँ पहुँच गये और लोगों के लिये प्रेरक निमित्त बन गये और लोगों ने आपका अनुकरण किया। तो नेतृत्व करने वाला इतना आत्म विश्वासी होता है वह कहता है कि परिस्थिति को मैं बदलकर रहूँगा, परिस्थिति मुझे बदल नहीं सकती। संसार में जो व्यक्ति परिस्थिति के अनुसार ढल जाते हैं वे नेतृत्व करने में असफल हो जाते हैं, जो परिस्थितियों को भी जैसा चाहते हैं वैसा बदल देते हैं वे वास्तव में नेतृत्व करने में सफल हो जाते हैं।

महानुभाव! जीवन में परिस्थितियाँ सदैव एक सी नहीं रहती। परिस्थितियाँ तो सूर्य की तरह से हैं सूर्य का उदय होता पूर्व से है किन्तु कभी पश्चिम में दिखाई देता है, कभी मध्य में दिखाई देता है, कभी प्रकाश मंद होता है, कभी प्रकाश तीव्र होता है। नदी की लहर की तरह से होती हैं परिस्थिति, नदी में लहर कभी उठती है तो कभी डूबती है, पानी कभी घटता है कभी बढता है, तो कभी सूख भी जाता है तो कभी बाढ भी आती है। परिस्थितियाँ कभी भी हमारे मन

के अनुसार नहीं आती। परिस्थितियाँ कैसी भी आ जायें किन्तु हमारे मनोबल को तोड़ न पायें तब नि:संदेह मानना चाहिये कि हमारे अंदर क्षमता है।

नेतृत्व करने की क्षमता वह कहलाती है, जिसमें क्षमाशीलता का भाव हो। यदि क्षमाशीलता का भाव नहीं है, अपने अधीन और आश्रितों को क्षमा नहीं कर सकता, सिर्फ और सिर्फ कठोर दंड देना ही जानता है, तब उसकी वह व्यवस्था ज्यादा दिन चल न सकेगी, और केवल क्षमा ही क्षमा करता जाये उचित दण्ड नहीं दे, उसकी भी वह व्यवस्था ज्यादा चल नहीं सकती। क्षमाशील भी हो और वह कठोर दण्ड देने में भी निर्भीक हो। वह निर्भीक व्यक्ति दया से युक्त होना चाहिये, कहीं निष्ठुरता नहीं आ जाये यदि ऐसा हो गया तो कोई भी उसके पास बैठना भी न चाहेगा। जिसके चित्त में दया-करुणा है, वह रहम दिल है, जहाँ प्रेम-वात्सल्य की सरिता बहती है तो लोग उसके पास आकर के बैठेंगे।

इसके साथ-साथ उस नेतृत्व करने वाले व्यक्ति में विनम्रता का भाव होना चाहिये। विनम्रता एक ऐसी चीज है जो सबको जोड़ लेती है। बिखरे हुये कागजों को जोड़ने के लिये फेविकोल पर्याप्त है, एक-एक बूँद से सबको जोड़ सकती है, एक सुई में वह सामर्थ्य है जो धागे का साथ लेकर के हजारें पृष्ठों को जोड़ देती है। सुई चुभती है कागज में तब महान् कष्ट देने वाली होती है। प्रारंभ में जिसमें कष्ट अनुभव हो रहा हो संभव है अंत में वहाँ सुख आयेगा, संघर्षमय जीवन का अंत हर्षमय होता है। सुई की चुभन से जो डर जायेगा वह धागे के बंधन को प्राप्त न कर सकेगा, बिखरा-बिखरा ही रहेगा एक व नेक नहीं हो पायेगा। जो पाषाण शिल्पकार की चोट से डर जाता है वह कभी परमात्मा की मूर्ति बन नहीं पाता। मिट्टी यदि कुंभकार की चोट से डरती रहेगी तो कभी मंगल कलश नहीं बन पायेगी। यदि बीज भूमि में जाने से पहले डरता रहेगा, स्वयं अपना नि:स्वार्थ समर्पण भूमि को

नहीं करेगा तो वह कभी अंकुरित न हो पायेगा न उस पर फल आयेंगे, न पुष्प आयेंगे। ऐसे ही वह व्यक्ति जो संचालन करने वाला हो, उसमें दया-करुणा का भाव हो, निर्भीकता हो, क्षमाशीलता हो, उसके अंदर विनम्रता के साथ-साथ उदारता का भी भाव हो।

विनम्रता जोड़ती है, उदारता जोड़े हुये को सँभाले रखती है। दो हाथ जुड़ जाते हैं तो संभव है सभी प्राणी जुड़ जाते हैं, हाथ जब दूर-दूर रहते हैं तो हमारे मन में भी कहीं दूरी बढ़ जाती है, यदि हाथ बाँध करके रहते हैं तब समझो हम अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पा रहे, हमारा व्यक्तित्व बँधा हुआ है, संकीर्ण और सीमित है। यदि व्यक्ति उदारता के साथ हाथ जोड़कर चल रहा है तो सबको जोड़ने में समर्थ है। यदि व्यक्ति दोनों खुले हाथ दूसरों का स्वागत करने के लिये तैयार हो और उसे हृदय से लगाये, उससे पहले सामने वाले के दोनों हाथ जुड़ जायें तब समझ लेना चाहिये आप दोनों का हृदय मिल गया।

तो नेतृत्व करने वाला व्यक्ति उदारमना होना चाहिये। अहंकार से रहित और विनम्र होगा तब वह निःसंदेह ऐसे फलीभूत वृक्ष की तरह होगा जो अनेक जीवों को आश्रय दे सके, वह फल वाला वृक्ष अनेक जीवों को आश्रय देता है, छाया देता है, फल देता है, ऑक्सीजन देता है और यदि विनम्रता का भाव नहीं है तब वह वृक्ष सूख जाता है, ठूंठ सा खड़ा रह जाता है। जिस वृक्ष में विनम्रता का भाव आ जाता है उस वृक्ष में नियम से उदारता का भाव भी आ जाता है। कोई भी वृक्ष अपने पुण्यों की गंध स्वयं नहीं लेता, अपने फलों को स्वयं नहीं खाता, अपने पत्तों का स्वयं भक्षण नहीं करता वह पर हित के लिये ही लुटाता है।

उदार शासकों के बारे में सुना है यदि कोई व्यक्ति गरीब है या भूखा है तो उन्होंने स्वयं का भोजन उसे दे दिया, यदि कोई व्यक्ति सर्दी में ठिठुर रहा है तो अपना वस्त्र उतारकर उसे दे दिया। उदारता के मायने यही है कि सामने वाले का कष्ट जब तुम्हारा कष्ट बनता

है तब कुछ भी त्याग किया जा सकता है। त्याग करना कोई बड़ी बात नहीं है। त्याग ऐसे करना जो अंदर की भावना से किया जाता है। त्याग कोई अहसान मानकर नहीं करना, वह त्याग जो अंतरंग से किया जाता है नि:संदेह अंदर से जोड़ने वाली चुम्बक कहलाता है।

कुशल नेतृत्व करने वाले व्यक्ति में न्यायप्रियता होनी चाहिये। न्यायप्रिय व्यक्ति जीवन में परिस्थिति का सामना तो करता है, कई बार न्याय की रक्षा करने के लिये उसे स्वयं भी अकेला संघर्ष करना पड़ता है। कई बार ऐसा भी हो सकता है कि साथी साथ छोड़ दे किन्तु न्याय की कसौटी पर कसकर के जब सत्य सामने प्रकट हो जाता है तब उसे बिछुड़ा हुआ वैभव, बिछुडे हुये साथी प्राप्त होते हैं। चाहे बात महाराणा प्रताप के बारे में हो या शिवाजी के बारे में हो, चाहे महारानी लक्ष्मी के बारे में हो, सदैव सिद्धान्तवादी बनकर के चलो, न्यायप्रिय बनकर के चलो, तब नि:संदेह न्याय के साथ चलने वाला व्यक्ति लोकप्रिय बन जाता है। परिस्थिति से समझौता करने वाला व्यक्ति आज नहीं तो कल असफलता का मुख देखेगा, उसकी निगाह आज नहीं तो कल नीची हो सकती है किंतु सिद्धान्त के साथ जीने वाला जब तक जीता है तब तक स्वाभिमान से जीता है और मृत्यु को प्राप्त होता है तब भी अजर-अमर होकर के दुनिया के द्वारा स्मरण किया जाता है, पूजा जाता है। तो न्यायप्रियता भी उसका एक बहुत महत्त्वपूर्ण गुण है।

अगला गुण है उसके अंदर शूरवीरता और पराक्रम हो। डरपोक रहेगा तो सत्य बात को कह न सकेगा, डरपोक रहेगा तो मैदान में आ न सकेगा, डर से पीछे भाग ही जायेगा। कायरता के साथ कभी भी नेतृत्व नहीं किया जा सकता, नेतृत्व करने का आशय है कि जो व्यक्ति सहन करता जाये, सहन करता जाये। वह सहे, पर कहे नहीं, कहे का असर कम होता है सहे का असर ज्यादा होता है। कहने का असर तत्काल में ज्यादा लगता है सहन करने का असर सुदीर्घकाल तक रहता है चाहे वह कितने ही बाद में मिले पर मिलता जरूर है।

महानुभाव! एक कुशल नेता में और भी बहुत सारी बातें हैं, मृदुभाषी हो, निर्मल चित्त का धारक हो, वह सबका हित सोचने वाला हो, वात्सल्य और प्रेम से युक्त हो आदि-आदि गुणों से युक्त हो। संक्षेप में बात बस यही है कि हम यदि नेतृत्व करने का भाव रखते हैं तो नेतृत्व करना एक बहुत बड़ा काम है, कसौटी है, अग्नि परीक्षा देने के समान है। और लोग कहते भी हैं कि यदि कहीं नेतृत्व करने जा रहे हो तो सिर पर एक तसला रखो जितना आये, जैसा आये वह सब सहन करते जाना। ट्रकों के ऊपर एक सूक्ति लिखी रहती है- नेकी कर और जूते खा, मैंने खाये तू भी खा। सत्यता के निकट ये वाक्य है कि उपकार करना सहज नहीं है यदि उपकार करना सहज होता तो संसार में कोई भी कर लेता, बड़ा काम करना, नेतृत्व करना सहज होता तो कोई भी कर लेता। इतिहास ने चाहे जीवंत व्यक्ति की पूजा की हो या न की हो किंतु आदर्शवादी व्यक्तियों के मृत होने पर पूजा अवश्य की है। और दिन दो दिन, चार महीने नहीं हजारों वर्षों तक पूजा की है। जो सिद्धान्तवादी महापुरुष रहे, जीते जी चाहे वे अपनी परीक्षा में झुलसते रहे किंतु इतिहास ने उन्हें मरने के बाद जीवंत कर दिया। तो नेतृत्व करने का कार्य भी ऐसा ही दुरूह कार्य है, अग्नि परीक्षा की तरह से कार्य है। जो भी व्यक्ति जहाँ-जहाँ का भी नेतृत्व कर रहे होंगे उन्हें बहुत कुछ सुनना पड़ता होगा। यदि युवा व्यक्ति घर का मुखिया बन गया तो उसे अपने कान सुनने के लिये तैयार रखने चाहिये, माँ-पिता-दादा दादी भी सुनायेंगे पत्नी भी और बच्चे भी सुनायेंगे, रिश्तेदार-अडौसी-पड़ोसी भी सुनायेंगे उसे सुनना है और सुनकर के उचित ग्रहण भी करना है सबका जवाब नहीं देना है। जवाब देने से संभव है संबंध टूट जायें, जवाब हर समय दिया भी नहीं जाता है जवाब कई बार समय स्वयं आकर दे देता है। कई जिज्ञासायें, समस्यायें ऐसी होती हैं जिनका जवाब हम नहीं दे पाते।

महानुभाव! नेतृत्व करने वाले व्यक्ति में उतनी क्षमता होनी चाहिये, उतना धैर्य होना चाहिये, उतावलेपन में कोई कार्य न करें तब तो वो

अपने समूह, संस्था, परिवार आदि कहीं की भी सेवा कर पायेगा। तब वह नि:संदेह लोकप्रिय नेता बन जाता है और उसका व्यक्तित्व पूजा जाता है। आपके मन में भी यदि नेतृत्व करने की अभीप्सा जाग्रत होती हो तब इस प्रकार के गुणों को अपनी चेतना में उत्पन्न करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें, जिससे आप यहाँ का नेतृत्व करते-करते एक दिन मोक्षमार्ग का नेतृत्व करने लग जायें-

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म भूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां, वन्दे तद् गुण लब्धये ॥

जिस तरह हमारे जिनेन्द्र भगवान् ने मोक्ष का नेतृत्व किया उनके पीछे-पीछे हम चल रहे हैं। वर्तमान काल में आ. शांतिसागर जी महाराज हुये, उन्होंने मुनि परम्परा का नेतृत्व किया, कितने उपसर्गों को सहन किया, कितनी प्रतिकूलताओं को सहन किया, आज उनके जीवन के बारे में पढ़ते हैं तो पढ़ते-पढ़ते कई बार आखें नम हो जाती हैं। आज भी वर्तमान काल में जितने भी आचार्य-उपाध्याय परमेष्ठी हैं या समाज के गणमान्य प्रतिष्ठित महानुभाव हैं वे जीते जी प्रतिकूलताओं का सामना कर रहे हैं तभी वे समाज को कुछ देने में समर्थ हो पा रहे हैं।

महानुभाव! हम और आप सामान्य नेतृत्व न करें, ऐसी शक्ति प्राप्त करें कि एक दिन मोक्षमार्ग के नेता बनें और मोक्ष को प्राप्त करें। ऐसी भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

''जैनम् जयतु शासनम्''

''शांति की विधि''

महानुभाव! संसार में जितने भी जीव दृष्टिगोचर होते हैं वे, और जो दृष्टि गोचर नहीं होते हैं वे, चाहे वे चर जीव हैं चाहे अचर, चाहे स्थावर हों या त्रस, चाहे वे संज्ञी हों या असंज्ञी, चाहे वे किसी भी गति में हों संसार के सभी जीव सुख और शांति की वांछा करते हैं। ऐसा एक भी जीव संसार में खोजना मुश्किल है जो जीवन में सुख और शांति नहीं चाहता। कोई भी जीव संसार में दुःख नहीं चाहता, अशांति नहीं चाहता, क्लेश या अन्य किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता नहीं चाहता। कई बार मन में ये विचार आता है कि जीव सुख-शांति ही क्यों चाहता है? कुछ और क्यों नहीं चाहता?

सुख और शांति इस जीव का मूल स्वभाव है, शुद्ध व शाश्वत स्वभाव है। विभाव में कोई भी जीव ज्यादा समय तक ठहर नहीं सकता। अन्ततोगत्वा उसे स्वभाव में आना ही पड़ता है। इसीलिये प्रत्येक जीव अनंतज्ञान चाहता है, अनंतदर्शन चाहता है, अनंत सुख व अनंत शक्ति चाहता है। और व्यक्ति चाहता है मैं संसार के सब जीवों को सब द्रव्यों को देखूँ-जानूँ किन्तु मुझे कोई न जान पाये। ऐसे अदृश्य स्थान पर पहुँच जाऊँ जहाँ मुझे न कोई देख पाये न जान पाये जो मुझ जैसा हो जाये वही मुझे जान-देख पाये अन्य संसारी प्राणी मुझे जान-देख न पायें। तो ऐसा ही इस जीव का स्वभाव है, अमूर्तपना आत्मा का शुद्ध स्वभाव है, लोक शिखर पर विराजमान होना इस निजी शुद्ध आत्मा का स्वभाव है इसीलिये जब-जब भी हम शांति से बैठते हैं, जब-जब भी हमारे चित्त में शांति आती है, जब-जब भी जिंदगी में थोड़ी खटपट कम होती है, जब-जब भी हम भोगों से तृप्त होते हैं तो क्षण भर के लिये ख्याल आता है कि ये सब व्यर्थ है।

जीवन में अहसास तो सभी को होता है किसी को देर, किसी को सवेर। अपनी असलियत का ज्ञान प्रत्येक प्राणी को है चाहे किसी

आवेश में या किसी जोश में, वेग और उद्‌वेग में आकर के कोई भी प्रवृत्ति करे, चाहे वह प्रवृत्ति मानसिक प्रवृत्ति हो, कायिक प्रवृत्ति हो या वाचिक प्रवृत्ति हो जो स्वभाव से असंगत है वह ज्यादा समय तक ठहर नहीं सकता। आवेशों में कोई व्यक्ति ज्यादा नहीं ठहरता। नदी में लहर उठती है क्षण दो क्षण के लिये, आखिर में लहर को डूबना पड़ता है। चाहे छोटे से जलाशय की लहर हो, चाहे झील-तालाब की लहर हो चाहे नदी-सागर की लहर हो लहरें उठती हैं किन्तु लहरें उठना स्वभाव नहीं है। लहर उठती है तो गिरती भी है, ऐसा कभी नहीं हुआ कि लहर उठी कि उठी रह गयी हो कभी नीचे झुके नहीं और ऐसा कभी नहीं हुआ कि लहर नीचे डूब जाये पानी में गडढ़ा जैसा दिखे वह कभी भरे ही नहीं। लहर का उठना भी विभाव है, गिरना भी विभाव है। आपने किसी जलाशय में कंकर डाला तो उसमें सर्किल-सर्किल बनते चले जाते हैं और बड़े आकार लेते चले जाते हैं किंतु थोड़ी देर के बाद वे शांत होना प्रारंभ हो जाते हैं। शांति कहाँ से आती है, जहाँ पर कंकर डाला था वहाँ से जल में शांति हो गयी तो सर्किल बनते जा रहे हैं किनारे तक, तो शांति यहाँ से पैदा होगी। यदि पीछे वाले सर्किल को रोकने का प्रयास किया जाये तो प्रयास असंभव है। एक कंकड़ डाला उसके माध्यम से सर्किल बनते चले जा रहे हैं, जब इस कंकड़ के डालने से केन्द्र से अशांति पैदा हुयी है तो शांति भी इसी केन्द्र से ही प्रारंभ होगी, ऐसा कभी नहीं हो सकता कि अशांति यहाँ से प्रारंभ हुयी और शांति कहीं और से प्रारंभ हो जाये।

इससे सिद्ध होता है हमारे जीवन में जो अशांति का कारण है, संभव है शांति का कारण भी वही बनेगा। जलाशय में जल है तभी लहर संभव है, तभी लहर का उठना-डूबना संभव है, तभी जलाशय में वे सर्किल बनना संभव है जल ही नहीं है तब न लहर है न कोई सर्किल है, न कोई बुदबुदे हैं, न बहाव तेज है न मंद है, न ठहराव है। जल ही नहीं तो कुछ नहीं। जल है तो उसमें विकृत पर्याय भी आ

सकती हैं, वैभाविक पर्याय भी आ सकती हैं और स्वाभाविक पर्याय भी आ सकती हैं। जीव है तो उसमें शुद्ध स्वभाव भी है विभाव भी है और अशुद्ध स्वभाव भी। शुद्ध स्वभाव जब प्रकट होता है तो अशुद्ध स्वभाव नहीं रह पाता और जब तक अशुद्ध स्वभाव रहता है तब तक पूर्ण शुद्ध स्वभाव प्रकट नहीं होता।

आज देखते हैं जीवन में शांति की विधि क्या है? यह समझना, हम समझते हैं बहुत जरूरी है। शायद सम्पूर्ण जीवन का सार इसी में है। यदि ये शांति जीवन में नहीं मिलती है तो जीवन चाहे राजा जैसा हो चाहे रंक जैसा कुछ फर्क नहीं पड़ता है। पुद्गल का प्रचय तुमने चाहे ज्यादा इकट्ठा किया या कम यदि चित्त में शांति नहीं है तो पर्वत के समान रत्नों के ढेर लगाकर भी क्या लाभ? चित्त में शांति नहीं है नोटों के बंडल से बोरे भरे तब भी क्या लाभ? यदि चित्त में शांति नहीं है तो सोने चाँदी से तुम्हारा पूरा महल भी बना हो तब भी क्या लाभ? ये सब सुख के साधन माने जाते हैं एक मोही व्यक्ति की दृष्टि में। मोही, अज्ञानी या संसारी जीव सुख और शांति इन्हीं से मानता है वह सुख-शांति प्राप्त करना चाहता है किंतु रास्ता उल्टा चलता है। अशांति के रास्ते पर चलकर के जीवन में कभी भी शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे उल्टी चाबी घुमाने से कभी ताला नहीं खुल सकता चाबी को तो सीधा घुमाना पड़ेगा, आज घुमाओ चाहे कल।

महानुभाव! जब तक जीवन में से अशांति के कारण दूर न होंगे तब तक शांति प्रकट न हो सकेगी। पहला प्रयास हमारा ये होना चाहिये कि अशांति के कारणों को हम जान लें, समझ लें और मान लें। जानना-समझना मात्र पर्याप्त नहीं है। जानने पर भी हम अंदर में अन्जान रहते हैं मात्र शब्दों का संग्रह कर लेते हैं, समझकर भी हम नासमझ रहते हैं। इतनी समझ आ जाती है कि दूसरों को समझाने में समर्थ हो जाते हैं किन्तु फिर भी जरूरी नहीं है कि हम अपनी आत्मा को समझा पाये हों। और जब तक हम अपनी आत्मा को नहीं समझा पाये, तब

तक चाहे हम दुनिया को समझा दें, या किसी को ना समझायें कोई फर्क नहीं पड़ता है। जीवन में अशांति के कारण क्या हैं, इसे पहले जान लें, जब समझ में आ जायेगा, जब मान लेंगे तब अशांति के कारणों से बचने का पुरुषार्थ प्रारंभ हो सकता है।

यदि किसी बालक को अंदर में ये ज्ञान हो जाये कि अग्नि जलाती है तब वह अग्नि के पास आता नहीं, प्रारंभ में दीपक की ज्योति को देखता है, अच्छी लगती है, नैनों को लुभाने वाली चित्ताकर्षक होती है, वह पास में जाता है और दीपक की बत्ती को पकड़ना चाहता है, मुट्ठी में बंद करके अपने पास रखना चाहता है। किंतु जैसे ही दीपक की ज्योति पर उसका हाथ पहुँचता है, वह उसे मुट्ठी में भरने का प्रयास करता है तो हाथ जल जाता है। जब वह दीपक के पास जा रहा था तब माता-पिता, भाई बंधु किसी ने देख नहीं पाया जब-जब वे देख लेते थे तब-तब उसे दीपक से दूर कर देते थे किन्तु बालक एक बार चुपचाप चला गया जब घर में कोई नहीं था या सभी कक्ष में थे, दीपक बाहर जल रहा था, बालक ने जाकर उस ज्योति को मुट्ठी में लेना चाहा किन्तु तभी उसका हाथ जल गया वह रोने लगा, चीखने लगा तो सभी घर वाले इकट्ठे हो गये, देखा तो पूरा हाथ जल गया। कुछ दिनों में उसका हाथ ठीक हो गया, किंतु अब उसे यदि घर वाले भी कहें कि दीपक की ज्योति को हाथ में ले लो तो वह बालक दीपक की ज्योति को पकड़ता नहीं है। अब यदि कहीं कभी ऊधम करता है तो माँ उसे चूल्हे में से लकड़ी निकालकर दिखाती है तो वह दूर भागता है क्यों? क्योंकि उसे दीपक की ज्योति का सही ज्ञान हो गया, उसके पहले माता-पिता कहते थे जल जायेगा तब नहीं मानता था।

ऐसे ही हमें अंदर से परिज्ञान हो जाये कि हमारे जीवन में अशांति किस कारण है? हम जितने भी कार्य करते हैं यदि उन कार्यों को भी अशांति से कर रहे हैं तो अशांति से किये गये कार्य शांति कैसे देंगे?

आपके पास शांति के उपायों के लिये समय नहीं है इसीलिये शांति के कार्य, धर्म के कार्य जल्दबाजी में किये जाते हैं और समय की बचत करके उस समय का दुरुपयोग किया जाता है। माला भी फेरनी है तो यदि 15 मिनट लगते हैं तो सोचते हैं 14 मिनट में हो जाये, ये नहीं सोचते कि कल 15 मिनट लगे थे आज 17 या 20 मिनट लगे तो अच्छी बात है। माला जल्दी करके समय की बचत करना चाहते हैं। जब भी जीवन में समय की आवश्यकता पड़ती है धर्म की क्रिया में ही कटौती की जाती है अन्य क्रियाओं में कटौती नहीं करते।

व्यक्ति सभी कार्यों को जल्दी करना चाहता है, जिस कार्य से शांति मिलती है उसमें भी शांति नहीं है, उसे भी उतावलेपन में करता है, अशांति से करता है, जब कारण ही अशांति युक्त हैं तो शांति कैसे उत्पन्न कर देगा। नमक के माध्यम से जितने भी पकवान बनाये जायेंगे वे नमकीन ही होंगे, शक्कर के माध्यम से बनाये जायेंगे तो मिठास युक्त होंगे, हमारी किसी भी कार्य की नींव जब अशांति पर ही टिकी है तो शांति प्राप्त कैसे हो सकती है? इसीलिये हम सर्वप्रथम अशांति के कारणों को जान लें, कि हमारे जीवन में अशांति कहाँ से आती है? क्यों आती है? हमारे जीवन में ये उतावलापन क्यों आता है? हमें बैचेनी क्यों आती है? हम चैन से बैठ क्यों नहीं पाते? कारण ये है कि जब हमारी अपेक्षा बढ़ती है, तो जैसी हमने अपेक्षा की है, जैसे अरमान सजाये हैं, जैसी भावना भायी है उसे जल्दी से व्यक्त करने के लिये आतुर हो जाते हैं फिर भावना-विचार-अरमान और सपने अंदर में गैस पैदा करते हैं। जैसे-भोजन किया जाये और गैस बन रही हो तो व्यक्ति को चैन नहीं पड़ता, इधर से उधर चक्कर लगाता है कैसे भी गैस निकले। यदि किसी को भूत की बाधा हो जाये तो चैन से बैठ नहीं सकता। यदि बिच्छू डस ले तो चैन से बैठ नहीं सकता, यदि किसी मादक पदार्थ का सेवन कर ले तो चैन से बैठ नहीं सकता ऐसे ही किसी व्यक्ति के मन में उतावलापन आ जाये तो चैन से बैठ नहीं

सकता, वह हर काम में जल्दबाजी करेगा। उससे पूछो भईया क्या बात है? जल्दी क्यों कर रहे हो, ट्रेन निकल रही है क्या? कहीं पेशी में जाना है क्या? यदि ऐसा कुछ है तो पहले उस काम को वहाँ जाकर निपटाकर के आओ। यदि प्रभु परमात्मा के चरणों में आये हो क्षणभर की शांति के लिये, वहाँ पुण्य कार्य करने आये हो उस पुण्य के कार्य को भी उतावलेपन से करोगे तो फिर पुण्य कहाँ से मिलेगा? शांति कहाँ से मिलेगी?

महानुभाव! अशांति के कारण क्या हैं विचार करो। विचार करोगे तो सबके कारण अलग-अलग निकलकर आयेंगे और उनका मूल शब्द एक ही रहेगा। कोई कहेगा मेरा चित्त अशांत हो जाता है मेरे क्रोध के कारण, मुझे क्षणभर भी क्रोध आता है तो मैं आग बबूला हो जाता हूँ, और एक क्षण का क्रोध मेरा पूरा दिन खराब कर देता है। कई बार दो-चार-आठ दिन तक भी उस क्रोध की वासना नहीं जाती और कई बार तो महीनों-वर्षों तक भी क्रोध की वासना नहीं जाती, और वह क्रोध मुझे अंदर ही अंदर बैचेनी पैदा करता रहता है। जिसने मेरा अनिष्ट किया, उसके प्रति अनिष्ट का भाव आता है, मैं उसका अनिष्ट कर देता हूँ तब भी बैचेनी, नहीं कर पाया तब भी बैचेनी। तो किसी के जीवन में अशांति का कारण क्रोध भी होता है। ये क्रोध जितना गहरा होता है उतनी गहरी अशांति होती है। क्रोध जड़ है, जड़ जितनी गहरी होगी वृक्ष उतना बड़ा बन जायेगा, अशांति ऊपर का वृक्ष है जो दिखाई देने वाला है और क्रोध उस वृक्ष की आत्मा में गयी हुयी जड़ है। जितना क्रोध की जड़ को पानी-खाद और भोजन बनाने के लिये प्रकाश-वायु मिलती रहेगी उतना अशांति का वृक्ष बढ़ता चला जायेगा।

क्रोध को यदि तत्क्षण ही रवाना कर दो, हाथ जोड़कर वापस भेज दो भाई! मुझे अभी तेरी आवश्यकता नहीं है तू अभी यहाँ से पधार, बाद में जब कभी तेरी आवश्यकता होगी तो मैं तुझे बुला लूँगा तू अभी यहाँ से जा। तो क्रोध बार-बार नहीं आयेगा, क्रोध को जब बार-बार

भगायेंगे तो उसे लगेगा मेरा अपमान हुआ है। मैं गया तो किसी ने मेरा सम्मान नहीं किया, मुझे रोका भी नहीं, तो चला जाता है। बड़ी देरी से आता है और एक बार आपने सम्मान के साथ बैठा लिया तो वह जब एक बार जमकर के बैठ गया तो संभव है वह क्रोध वर्षों तक ही नहीं भवों-भवों तक भी आपका पीछा न छोड़े।

मुझे लगता है क्रोध एक ऐसा मित्र है जिससे आप एक बार मित्रता तो करके देखो वह आपका साथ पूरा निभाता है, चाहे कोई और जीवन साथी तुम्हारा साथ निभाये या नहीं। किन्तु क्रोध रूपी मित्र तुम्हारा पूरा साथ निभाता है वह इतना निरालसी व कर्त्तव्यनिष्ठ है कि तुम्हारे जीवन में कभी भी अनर्थों की कमी नहीं आयेगी, तुम्हारे जीवन में कभी उपद्रव की, अशांति की कमी नहीं आयेगी, बस एक बार मित्रता की तो तुम्हारा चित्त सदैव क्षुभित रहेगा। वह क्रोध आपके चित्त को क्षोभ से रिक्त नहीं होने देगा। इतना उद्यमशील है कि आपने एक बार मुस्कुराकर हाथ जोड़कर बुला लिया और बिठा लिया अपनी हृदय की गद्दी पर तो बस जिंदगी भर या कई जिंदगी भर चक्कर काटते रहना, जिस गद्दी पर क्रोध को बिठाल दिया है, उस गद्दी को प्राप्त करने में कितने भव लगेंगे, इसे कौन जानता है। तो अशांति का पहला कारण किसी की दृष्टि में क्रोध भी हो सकता है।

किसी की दृष्टि में अशांति का कारण अहंकार होता है। अहंकार अंधकार के समानवाची शब्द है। अंधकार उसे कहते हैं जो आँखों वाले व्यक्ति को भी अंधा कर दे, अंधकार यदि घना है तो आँखों वाले व्यक्ति को अपना हाथ नहीं दिखता, ऐसे ही अहंकार का भी वही कार्य है, अहंकार में भी व्यक्ति कहाँ देख पाता है, अहंकार में विवेक नष्ट हो जाता है, उसकी दृष्टि और दृष्टिकोण दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। किसी भी वस्तु को दूर से या गुरूर से देखने पर वह छोटी दिखाई देती है, अहंकार से तीन लोक के नाथ को भी देखोगे तो उनका व्यक्तित्व

भी तुच्छ ही दिखेगा, पहाड़ को भी दूर से देखोगे तो छोटा सा दिखेगा, और जब पास जाओगे, चलोगे, चढ़कर के पार करके आओगे तो कहोगे सुबह से शाम हो गयी, दूर से छोटा सा दिख रहा था। दूर से और गुरूर से वस्तु छोटी दिखाई देती है। गुरूर क्या है? गुरूर अहंकार है जो सत्य से परिचय नहीं होने देता, किसी भी गुणी व्यक्ति के व्यक्तित्व को ज्यों का त्यों देखने में असमर्थ रहता है। गुरूर प्राय:कर कल्याण के पथ, कल्याण के सूत्र इन सबको बोना कर देता है और जो अकल्याण करने वाले हैं उनका महत्त्व बढ़ा देता है। यह अहंकार, ये मान जब आता है तब खुद का भान नहीं होता, जिसके पास मान है उसके पास स्वयं का मान (सम्मान) नहीं है, उसे खुद का ज्ञान नहीं है।

कई बार ज्ञान का भी मान हो सकता है, संसार में ऐसे बहुत प्राणी हैं जिन्हें अपने ज्ञान का मान है किन्तु संसार में ऐसे प्राणी बहुत कम हैं जिन्हें अपने मान का ज्ञान है और जब तक मान का ज्ञान नहीं होगा तब तक ये मान तुम्हें चैन से बैठने नहीं देगा। बालक जब तक स्कूल में नहीं गया तब तक कोई बात नहीं शांति से बैठता था, आज पहले दिन स्कूल गया, और ABCD याद कर ली घर आते ही मम्मी को अलग सुनाता है, पापा को अलग, भाई-बहिन को अलग, घर में उछलकूद कर रहा है ABCDEFG, गाता जा रहा है। जब तक चार लोगों को सुना नहीं देगा तब तक शांति से नहीं बैठेगा। जीवन में जो उपलब्धि है उसे 4-6-10-50-100-1000 लोगों को बता नहीं देगा तब तक उसे चैन नहीं पड़ती। कूकर जिसमें आप दाल-सब्जी पकाते हैं, उस कूकर के ऊपर ढक्कन में एक स्थान (छेद) होता है जिससे गैस निकल जाये। वहाँ सीटी लगी होती है जिसमें से पूरी गैस निकल जाती है। यदि उस स्थान को बंद कर दिया जाये तो? तो कूकर फट जायेगा। उसे चैन नहीं पड़ रहा यदि उसे उपलब्धि हो रही है, कच्ची दाल सब्जी उसमें पक रही है वह चैन से नहीं बैठ सकेगा उसमें गैस बनेगी तो वह सीटी देगा।

ऐसे ही अपने अंदर में कोई भी उपलब्धि होगी तो व्यक्ति चैन से बैठ नहीं सकता चिल्लायेगा, चीखेगा कहीं भी जायेगा किंतु चैन से बैठ नहीं पायेगा। यदि अंदर में कुछ है और उसे उसका अहंकार है तो चैन से नहीं बैठेगा वह उपलब्धि भी अशांति का कारण बन जायेगी इसीलिये अहंकार भी अशांति का कारण हो गया। किसी के जीवन में किसी वस्तु की उपलब्धि और उससे जनित अहंकार वह भी अशांति का कारण होता है। जब वह वस्तु नहीं थी तब अहंकार नहीं था, जब किसी व्यक्ति के पास इतनी आमदनी थी कि घर का खर्च चल गया तो पर्याप्त है और कोई साधु आये तो भूखा न जाये। कबीर का दोहा–

साँई इतना दीजिये, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

यह स्थिति थी तब तो कोई बात नहीं थी, जब थोड़ा कमा लिया, नया पैसा आया तो अब शांति से बैठना मुश्किल है। जब नहीं था तब घर के किसी भी कोने में बैठा जा सकता था जब कुछ कमा लिया है तो घर के कोने में तो ठीक है मौहल्ले में नही बैठ सकते, अब तो पूरे नगर में शोर मचा रहा है, पूरे जिले–प्रान्त में शोर मचाता है कि मेरे पास कुछ है, और जो है वह जब तक रहेगा तब तक शांति भंग होगी ही होगी। और कदाचित् वह वस्तु जैसी आयी वैसी ज्यों की त्यों, अपने साथ कुछ और भी लेकर चलती बनी वह दौलत आयी दो लात मारकर ज्यों की त्यों चलती बनी, तो पुनः वही कोठरी, वही कोना, वही कमरा न बोल रहे, न देख रहे, न किसी से मिलने जाना है न आना है। जब कुछ था तब घर मैं बैठ नहीं सकता, जब कुछ था तब रात को नींद भी नहीं आ रही, न भोजन की भूख लग रही न प्यास लग रही, बस गैस बन रही है। कोई भी चीज हो तो गैस बनती है, और गैस चैन से नहीं बैठने देती है। पेट में भोजन नहीं है तो शायद गैस कम बने और भोजन यदि थोड़ा ज्यादा पहुँच गया, गैस बन गयी, कब्ज हो गयी तो न बैठे चैन, न खड़े चैन, न लेटे चैन, न टहलते हुय चैन। जब देखो तब

बेचैन ही बेचैन। गले में चैन नहीं थी तब तक सब कुछ चैन से था, जब गले में चैन आ गयी तो वह यदि कॉलर के नीचे पहुँच जाये तो बेचैन कर देती है, और कॉलर के ऊपर आ जाये तब भी बेचैन करती है कहीं कोई छीनकर नहीं ले जाये। उपलब्धि चाहे कोई भी हुयी हो, वह उपलब्धि का अहंकार भी अशांति का कारण है।

किसी के जीवन में तीसरा बेचैनी का कारण हो सकता है छल-कपट। मायाचारी आपने अकेले में की, किसी को नहीं मालूम दुनिया का कोई व्यक्ति नहीं जानता बस आपकी आत्मा जानती है और प्रभु परमात्मा जानता है, किन्तु जब भी आप अकेले में बैठते हो, आपके द्वारा किया गया पाप आपकी आँखों में आ जाता है फिर आप तिलमिला जाते हैं फिर भीड़ में जाते हैं। ऐसा लगता है वह पाप मुझे खाने आ रहा है, वह पाप का नाग मुझे डस लेगा, यह छल मेरे चित्त में छाले देने वाला है, मैंने छल-बल से काम किया, किसी को लूटा, किसी की हत्या की कुछ भी कार्य-अकार्य-अन्याय किया, बुद्धिपूर्वक यदि कोई मायाचारी की है तब चैन नहीं मिलेगा। धन-पद-प्रतिष्ठा-विजय-वैभव-सेवक-चाकर आदि सब कुछ मिल सकता है किन्तु चैन नहीं मिल सकता। तो कई बार अशांति का कारण वह छल भी होता है। वह मायाचारी जिसके साथ भी की है हो सकता है वह फिर भी शांति से बैठ जाये, उसे अशांति नहीं है वह कहता है मेरे कर्म का उदय है कोई बात नहीं अपने पुण्य-पाप के पुरुषार्थ से अपने भाग्य का निर्माता में स्वयं हूँ, उस भाग्य की चुंबक से वह वस्तु मेरे पास स्वतः खिंची चली आयेगी। भाग्य नहीं बनाऊँगा, वस्तु को पकड़ूँगा तो वह जिसके भाग्य की है उसके पास चली जायेगी इसीलिये ये छल-कपट-धोखा और मायाचारी निःसंदेह अशांति का कारण है। आपने जीवन में चाहे कितना ही घाटा सहन क्यों न किया हो किंतु छल-बल से यदि थोड़ा भी धन लिया होगा या कुछ अन्याय करके ग्रहण किया है वह आपकी आत्मा जानती है जब भी अकेले

बैठोगे तब-तब आत्मा अशांत रहेगी। 500 करोड़ का घाटा सहन किया ईमानदारी से तो उसमें अशांति नहीं होगी, मन कहेगा तेरे भाग्य का था तब तक रहा, अब जब नहीं है तो चला गया, भाग्य का होगा तो फिर लौटकर आयेगा किन्तु छल से यदि 500 रू. भी कमाये, वह छल अंतरंग में छाला देने वाला होगा, पीड़ा-कष्ट देने वाला होगा, अशांति को देने वाला होगा। तो किसी के जीवन में ये छल-कपट भी अशांति का कारण हो सकता है।

किसी के जीवन में अशांति का कारण लोभ भी हो सकता है। **'लोभ-पाप का बाप बखाना'।** लोभ की प्रवृत्ति ऐसी है कि वस्तु कहीं और है, तुम कहीं और हो, उसे प्राप्त करने के लिये निरंतर भावना भा रहे हो कि मुझे मिले-मिले। जो मिल गयी है उसका सदुपयोग नहीं कर पा रहे, जो नहीं मिली है उसके लिये तरस रहे हैं बिलख रहे हैं। व्यक्ति अभावों में जीने का आदी हो गया है, सद्भाव का आनंद लेने में असमर्थ हो जाता है। यदि सद्भाव का आनंद लेना शुरू कर दे, उसका सदुपयोग करना प्रारंभ कर दे, तब जिस वस्तु का अभाव है, वह वस्तु उसके पास स्वतः आ जायेगी। किसी भी वस्तु का सदुपयोग करने से वह वस्तु अनर्थकारी नहीं होती, लाभदायक होती है दुरुपयोग करने से जो है वह भी नहीं टिक पाती। लोभ के कारण भी व्यक्ति चैन से न खा पा रहे न सो पा रहे, बस हाय पैसा, हाय पैसा, हाय पैसा। चाहे ऐसा हो या वैसा, चाहे कैसा भी हो पर पैसा हो। क्योंकि ये मानसिकता बनी हुयी है कि पैसे से सुख शांति मिलेगी। किंतु जिनके पास अपूर्व धन सम्पत्ति है उनके पास जाकर के पूछो भईया! तुम्हारे पास शांति है क्या?

आज जो हजारों-करोड़ों के मालिक हैं तब भी शांति नहीं है। रावण से पूछो इतना वैभव तुमने प्राप्त किया, क्या तुम्हें शांति मिली, कंस से पूछो कि तुम राजा थे, क्या तुम्हें शांति मिली, धृतराष्ट्र और

दुर्योधन से पूछो-तुम राजा बने थे, तो क्या तुम्हें शांति मिली। और भी किसी वैभवशाली व्यक्ति सुभौम-चक्रवर्ती-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती थे उनसे पूछो क्या शांति मिली? वैभव शांति नहीं देता है, शांति यदि वैभव से मिलती तो तीर्थंकर अपने राज्य को छोड़ते ही क्यों, शांति यदि वैभव से ही मिलती तो सिद्धालय में सिद्धों के पास भी बहुत सारा वैभव होना चाहिये था। वैभव शांति का कारण नहीं है।

लोभ करने से क्या वस्तु प्राप्त हो जायेगी? इष्ट वस्तु की संप्राप्ति पुण्य के उदय से होती है और लोभ करने से पाप का बंध होता है। लोभ पाप प्रकृति है, मोहनीय कर्म का एक भेद है। लोभ करने से पाप का ही बंध होता है इसीलिये लोभी व्यक्ति के जीवन में कभी बरक्कत नहीं होती, उदार व्यक्ति के जीवन में बरक्कत खूब होती है। जो पाया, उसे खाया व दूसरों को खिलाया व लुटाया उसके पास कभी कमी नहीं आती किन्तु जो न खाता है, न खिलाता है, न दोनों हाथ लुटाता है जो जोड़-जोड़ कर रखता चला जाता है उसका धन एक दिन छिन जाता है वह रक्षा नहीं कर पाता। जैसे मधुमक्खी पुण्यों का पराग लाकर इकट्ठा करती है और कोई बहेलिया आता है उसका शहद निकाल कर ले जाता है, ऐसे ही कृपण व्यक्ति जो मौके का लाभ नहीं उठा पाता, बाद में पछताता है।

लोभी न खाता है, न खिलाता है, न खर्च करता है, वह तो बस लोभ करता रहता है इसीलिये प्रायःकर के वर्षों-वर्षों तक व्यक्ति लोभ के कारण सम्पन्न नहीं हो पाते, कहते हैं क्या करें महाराज! हम तो गरीब के गरीब हैं हम वर्षों से इतनी मेहनत करते आ रहे हैं किन्तु फिर भी धन नहीं बढ़ रहा? कारण ये कि हम भगवान् की पूजा-अर्चा-जापादि सब करते हैं किन्तु लोभ के कारण लगाते हैं, लोभ नामक पाप को छोड़ते नहीं इसीलिये तुम्हारा धन बढ़ता नहीं। यदि उस निर्धनता के समय में भी तुम्हारे चित्त में उदारता का भाव पैदा हो जाये, उस गरीब बुढ़िया की तरह से जिसके पास एक रोटी और दो आम थे,

एक साड़ी थी। एक व्यक्ति भीख माँगने आया-कहा-माँ मैं तीन दिन का भूखा हूँ उस बुढ़िया ने कहा कोई बात नहीं भूखी तो मैं भी चार दिन की हूँ किन्तु तू मेरे पास आया है तो ले, एक रोटी में से आधी रोटी दे दी और एक आम दे दिया। उस बुढ़िया के चित्त में उदारता थी, किन्तु वह व्यक्ति भिखारी नहीं था, वह देव था उस गरीब वृद्धा की परीक्षा करने आया था, वह देव अपने असली रूप में आता है, उसे प्रणाम करता है माँ तुम्हारी भावना को मैने तब भी देखा था जब आप सम्पन्न थी, नगर सेठानी थी और आज भी देखा चाहे धन चला गया पर धन जाने से तुम्हारी भावना नही गयी उदारता का भाव आज भी ज्यों का त्यों है। जिसके जीवन में उदारता का भाव होता है उसका धन कभी कम नहीं होता, जिसके जीवन में इससे विपरीत लोभ का भाव आ जाये, घर में पैसा तो रखा है पर उसको खर्च नहीं करता है तो समझो धन नष्ट हो रहा है।

यदि किसी व्यक्ति ने किसी का पैसा उधार लिया होता है तो उसे शांति नहीं मिलती है, और लोग तो कहते हैं कर्ज तो बाप का भी बुरा है और जिसके पास यदि मंदिर का कर्ज हो, धर्म का कर्ज हो वह तो महा बुरा है। आप कहेंगे मंदिर से, भगवान् से कर्ज कब लिया, तो महानुभाव! बोली आदि लेकर पैसा नहीं चुकाना यह कर्ज ही है इसीलिये हमारे जैन शास्त्रों में दान की परम्परा आयी है। कहीं किसी शास्त्र में ये नहीं आया कि दान बोलो। बोलने की बात कही नहीं लिखी, ये कहा अमुक सेठ राजा ने दान दिया। दान दिया जाता है बोला नहीं जाता है। मंदिर धर्मस्थान है पुण्य क्रिया तत्काल में होती है दान और पूजा बोली नहीं जाती कि मैंने भगवान् की 100 पूजा बोल दी। तो क्या बोलने से पूजा का फल मिल जायेगा? नहीं मिलेगा। पूजा करने पर ही पूजा का फल मिलेगा, ऐसे ही दान देने पर ही दान का फल मिलेगा, दान बोलने से दान का फल नहीं मिलता है।

आपने किसी महाराज को बोल दिया मैं आपको दान देना चाहता हूँ तो फल मिल गया क्या? जब आपका दिया आहार उदर में पहुँच जायेगा, पचेगा, मुनिमहाराज उस शक्ति के माध्यम से अपने संयम की साधना करेंगे, तप की वृद्धि करेंगे तब नि:संदेह उन्होंने जो पुण्य का संचय किया, तब वह तुम्हारा आहार दान उनकी साधना में सहायक बना। तब नि:संदेह तुम्हें पुण्य का लाभ हो गया। यदि कोई भी बोल दे भईया! आहार देना चाहता है, रख जा, छ: माह बाद तुम्हारी सामग्री का उपयोग कर लेंगे, तो पुण्य मिलेगा क्या? नहीं मिलेगा। ऐसे ही दान तत्काल में ही पुण्य देता है वह कालान्तर के लिये संचय नहीं किया जाता।

महानुभाव! जीवन में और कोई नियम ज्यादा लो या न लो किंतु एक नियम जीवन में ले लो, आप नोट कर लेना कि इस नियम से आपके जीवन में कितना लाभ होगा, कितनी सुख शांति मिलेगी। मैं जीवन में कभी मंदिर का पैसा उधार नहीं रखूँगा। भगवान् से कहना-भगवान् मुझे इतनी शक्ति देना कि मैं कभी मंदिर का कर्जदार न बनूँ।

अशांति का 5वाँ कारण है, 'काम वासना'। किसी का किसी के प्रति यदि काम भाव जाग्रत हुआ है, यदि मन में वासना जाग्रत हुयी है तो वह उसे प्राप्त किये बिना भी बैचेन रहता है और तो और प्राप्त करके भी शांति मिलती नहीं। उसकी ये गलत धारणा है कि शांति मिल जायेगी किंतु शांति तब भी नहीं मिलती। प्राप्त किये बिना अशांत है, भोगता-भोगता भी अशांत है और भोगकर छोड़ता है तब भी अशांत है और उसका वियोग न हो जाये यह सोचकर भी अशांत है। इसीलिये संसार के पदार्थ और भोग सामग्री सभी दु:ख के कारण हैं।

काम के साथ मोह भी अशांति का कारण है। मोह का आशय है अपने स्वरूप को भूलकर पर स्वरूप को अपना मान लेना। वह मोही व्यक्ति चाहे कुछ भी प्राप्त कर ले, संसार का समस्त वैभव भी उसको प्राप्त हो जाये तब भी वह शांति को प्राप्त नहीं कर सकता,

मोही जीव को शांति मिल नहीं सकती। शांति के लिये शर्त है कि क्रोध-मान-माया-लोभ-काम और मोह का परित्याग करना पड़ेगा। इन अशांति के कारणों के रहते हुये शांति कैसे मिलेगी। प्याज की गाँठ को मुट्ठी में रखो और पुनः गुलाब का पुण्य भी सूँघते रहो तो क्या प्याज की गंध कहीं चली जायेगी? यदि कीचड़ शरीर से लिपटी हुयी है, ऊपर से इत्र भी छिड़को तो क्या फायदा, कीचड़ की बदबू कहीं चली गयी क्या? इसीलिये अशांति के कारणों को तो छोड़ना ही पड़ेगा। उनका परित्याग किये बिना जीवन में शांति की विधि, शांति के सूत्र, शांति का मार्ग कैसे प्रारंभ हो।

यदि नाव को खूँटे से खोला ही नहीं है तो नाव दूसरे किनारे कैसे पहुँचेगी, कोई कितना ही नाव को खेता जाये पर जब तक नाव बंधी है तब तक पार नहीं हो सकती, ऐसे ही हमारे जीवन में जब तक अशांति के कारण हैं तब तक शांति को प्राप्त नहीं किया जा सकता। संक्लेशता अशांति की जननी है और संक्लेशता पैदा होती है मन के प्रतिकूल कार्य होने से। जब भी मन के प्रतिकूल कार्य होता है, अपेक्षाओं की जहाँ उपेक्षा होती है वहीं संक्लेशता बन जाती है और अशांति पैदा हो जाती है। हम संक्लेशता को छोड़ना नहीं चाहते इसीलिये अशांति हमारे सामने आ जाती है।

महानुभाव! अशांति के कारण छोड़कर शांति के लिये अग्रसर होओ। शांति के लिये निर्मलता चाहिये, निश्छलता चाहिये, प्रशांति चाहिये, निर्मानता चाहिये, निर्मोहिता चाहिये, निष्कामपना चाहिये तब शांति आती है। जो अक्रोध से युक्त है क्षमाशील बन पाया है वही शांति को प्राप्त कर सकता है, जिसने अहंकार को छोड़कर के विनय को स्वीकार कर लिया है वह चित्त में शांति अनुभव कर सकता है, जो छल-कपट को छोड़कर के सरल-सहज बन गया वह शांति को प्राप्त कर सकता है, जिसके मन में किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति आसक्ति नही है, प्राप्ति की गृद्धता नही है, लोभ-लालच नहीं है वह

शांति को प्राप्त कर सकता है। जो भोगों में आसक्त नही वह शांति का अनुभव कर सकता है, जिसे पर वस्तु में मोह नहीं है जो जानता है ये शरीर भी मेरा नही है तो पर वस्तु मेरी कैसे हो सकती है वही शांति को प्राप्त कर सकता है।

शांति को प्राप्त करने की विधि है-ठहर जाओ! दौड़कर के, उतावलेपन में, चलते-चलते शांति नहीं मिलती। ठहरने से क्या होता है? किसी जलाशय में पानी ठहरा हुआ है तो (गंदगी नीचे बैठने से) वह निर्मल रहेगा शांत होगा और पानी में यदि चंचलता है चाहे हवा के वेग से उसमें लहरें उठ रही हैं, चाहे कंकड़ डालने से उसमें चंचलता आ रही है, चाहे मछली के चलने से चंचलता आ रही है जल में चंचलता जब तक आ रही है तब तक वहाँ शांति नहीं है और जब उसमें ठहराव आ जायेगा, तब शांति आ जायेगी। ठहराव से शांति होती है। यदि कोई पानी गंदा भी है, उसे रख दो तो कीचड़ जम जायेगी, पानी शांत हो जायेगा लहर नहीं आयेगी। उबलता पानी कभी शांत नहीं हो सकता और ठंडा होते ही अपने आप शांत हो जायेगा। ऐसे ही हमारे जीवन में कषायों से जो उबाल आता है, चेतना के प्रदेशों में उबाल आता है। ज्यों-ज्यों उबाल आता है त्यों-त्यों अशांति बढ़ती चली जाती है, जैसे ही कषायों का उबाल शांत होता है, जीवन में बहुत आनंद आता है।

महानुभाव! वही जीवन है, वही शरीर है, वही परिवार है, वही सब है किंतु इनके साथ पहले अशांति रही 50 वर्ष तक भी शांति प्राप्त नहीं कर पाया किंतु आज जब अपने अंदर में झाँककर देखा तब मालूम चला अशांति का कारण कोई बाहर का व्यक्ति नही मैं स्वयं हूँ, मेरे विकृत परिणाम, मेरी रागद्वेष की प्रवृत्ति है, मेरा मूर्च्छा भाव है, मेरा ईर्ष्या भाव है, मेरा तृष्णा का भाव है यही मुझे अशांत कर रहा था। जब मैंने इन विभावों को छोड़ दिया जब मैं शांति से बैठा तो शांति मिल गयी। शांति को प्राप्त करने की शर्त यही है कि शांति से बैठोगे तभी शांति को प्राप्त कर पाओगे। दौड़कर के अशांति में शांति की प्राप्ति

नहीं होती। जैसे दर्पण बहुत बड़ा है या छोटा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता यदि गंदा है तो उसमें अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता, निर्मल है तो छोटा भी हो तब भी इसमें अपनी शक्ल को देखा जा सकता है ऐसे ही हमारा चित्त निर्मल होना चाहिये, जब वह मलिन रहता है तब हमें वास्तविक शांति का अनुभव नहीं होता और जैसे ही हमारा चित्त निर्मल होता है तब नि:संदेह हमें शांति का अनुभव होता है।

हमारे जीवन में कषाय का कितना भी उबाल आ रहा हो, रागद्वेष की कितनी भी कीचड़ भनभना रही हो, हम यदि ठहर जायेंगे तो सब वहीं ठहर जायेगा। जैसे पानी का स्वभाव शीतल रहना है वैसे ही हमारी आत्मा का स्वभाव भी शीतलता है तो शांति को प्राप्त करने की विधि यही है कि हम शांति से बैठें। शांति से ही शांति का अनुभव किया जा सकता है। अशांति के साथ शांति का अनुभव नहीं किया जा सकता। जैसे मिथ्यात्व का बंध मिथ्यात्व के सत्ता में रहते हुये और मिथ्यात्व के उदय में आते हुए होता है यदि मिथ्यात्व चला गया तो मिथ्यात्व का बंध करना मुश्किल है। तो ऐसे ही शांति का अनुभव शांति के रहते होता है। अशांत रहोगे तो जो चित्त से शांति मिलने वाली है वर्तमान की अशांत प्रवृत्ति से वह भी अशांत हो जायेगी।

महानुभाव! उस शांति को प्राप्त करने के लिये अपने अशांत जीवन में से कुछ समय निकालो, उस समय कोई प्रवृत्ति नहीं मन-वचन-काय की प्रवृत्ति से रहित उस क्रिया हीनता से जो शांति मिलेगी वह अद्‌भुत ही होगी। आपको शांति अनुभव न हो पाये ऐसी सरकार ने अभी कोई जीएसटी नहीं लगायी है। आठों याम आप शांति का अनुभव कर सकते हो, किसी ने रोका नहीं है, किन्तु हम स्वयं ही आनंद का अनुभव नहीं करना चाहते हैं। हम उस अशांति व संक्लेशता में जीने के आदी हो गये हैं कि उसके बिना हमें चैन नहीं पड़ता।

आप सभी लोग उस शांति को प्राप्त करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। उसका सम्यक् पुरुषार्थ यही है कि हम शांति के साथ बैठना सीखें, हम कुछ समय ऐसा निकाले जब हम शांति से बैठें, न बोलें, न चालें न देखें, न सुनें बस शांतमय वातावरण में अर्थात् अंदर व बाहर दोनों तरफ से शांत होकर बैठें तब आपको बहुत शांति मिलेगी। वे शांति के चार क्षण भी असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा करने वाले होते हैं। वे क्षण शांतिमय पुण्य के निमित्त होते हैं, वे शांति के क्षण पाप का संवर करते हैं इसीलिये आपके जीवन में यह शांति प्रादुर्भूत हो, आप सब शांति से शांति का अनुभव करें, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।

''जैनम् जयतु शासनम्''

''जीवन यात्रा का मंगल कलश''

महानुभाव! आज चर्चा करते हैं उस विशेष महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर जिस पर चर्चा और चर्या किये बिना जीवन नि:सार ही नहीं अभिशाप बन जाता है। आप सभी लोग संसार में लौकिक यात्रा करते हैं, लौकिक यात्रा करने से पहले लौकिक शुभ शगुन करते हैं जीवन में यदि शगुन अच्छा होता है तो यात्रा मंगलमय मानी जाती है। यात्रा के प्रारंभ में यदि अपशकुन हो गया तब यात्रा को कुछ देर के लिये स्थगित कर देते हैं, द्वितीय बार यात्रा करना प्रारंभ करते हैं, फिर भी अपशकुन हो जाये तो पुन: स्थगित करते हैं और तीसरी बार यात्रा प्रारंभ करते हैं फिर अपशकुन हो जाता है तब फिर यात्रा करने का विचार छोड़ देते हैं।

पहली बार अपशकुन होने पर सोलह श्वाँस-उच्छ्वास तक ठहर जाते हैं, दूसरी बार अपशकुन होने पर कम से कम बत्तीस श्वांसोच्छ्वास तक ठहर जाते हैं और तीसरी बार अपशकुन होता है तो कम से कम एक घड़ी का विग्रह करके तब यात्रा प्रारंभ करते हैं। चाहे कोई सुभट, कोई सेनापति, कोई युवराज, कोई राजा युद्ध करने के लिये जा रहा हो तब उसकी आरती उतारकर के, भाल पर तिलक लगाकर के, विजय की भावना से उसके लिये मंगल करते हैं। चाहे कोई युवा शादी के लिये प्रस्थान कर रहा है, बारात लेकर जब निर्गमन (निकासी) होता है तब उसका भी मंगल किया जाता है, मंगलकलशादि सजाये जाते हैं, चौक पुराये जाते हैं, दीपकों से आरती की जाती है अथवा कोई और भी कहीं तीर्थक्षेत्र की यात्रा के लिये जा रहे हैं तब भी आप मंगल करते हैं। निकलते समय सामने कोई शगुन हो जाये, कोई मंगलकलश लेकर सामने से आ जाये, निर्धूम अग्नि दिखाई दे, रत्नराशि दिखाई दे या व्यवसाय के उद्देश्य से जा रहे हैं तब भी आप शकुन देखने का प्रयास करते हैं सामने से कोई सौभाग्यवती स्त्री आ जाये, सामने से कोई सजा हुआ घोड़ा या हाथी आ जाये, सामने से कोई मंगल कलश

लिये कन्या आ जाये अथवा और भी कोई शुभ शकुन दिखाई दे जायें तब आप अपनी यात्रा को मंगल मानते हैं।

महाभारत के युद्ध में नारायण श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुये कहा-यह धर्म के प्रति जो युद्ध कर रहे हो, धर्म की रक्षा के लिये युद्ध करना बहुत आवश्यक है, यदि आप युद्ध से विरक्त हो जाओगे, तब धर्म की रक्षा न हो पायेगी। अर्जुन ने कहा मैं इस समय युद्ध करने में स्वयं को समर्थ नहीं पा रहा क्योंकि मेरा चित्त व्याकुल है, क्षुभित है ऐसा समझता हूँ कि युद्ध करना अनुकूल नहीं लग रहा। युद्ध में सभी अपने दिखाई देते हैं और इनके ऊपर में अस्त्र-शस्त्र उठाकर के वार करूँ, ये मैं नहीं कर सकता, और मुझे विश्वास है मैं युद्ध में पराजित हो जाऊँगा। नारायण श्री कृष्ण ने कहा-धर्म के लिये युद्ध कर रहे हो, चाहे विजय हो या पराजय ''कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचिनः'' कर्म करना व्यक्ति का कर्त्तव्य है उसे पुरुषार्थ करना चाहिये फल की चिन्ता नहीं करना चाहिये। फल पर उसका कोई अधि कार नहीं है, कर्म करने पर अधिकार है तुम अपना कर्म करो और तुम्हें यदि असफलता भी मिली तब भी कोई विकल्प नहीं क्योंकि तुम निष्ठा से कर्म की पूर्ति कर रहे हो, निष्ठा से किया गया कर्म, धर्म की रक्षा में किया गया कर्म, धर्म के संवर्धन व संरक्षण में किया गया कर्म, मानमर्यादा की रक्षा के लिये किया गया कर्म वह पूजा और धर्म बन जाता है, इसीलिये तुम्हें अपने कर्म का पालन तो करना ही है, तभी वार्तालाप के दौरान सामने से देखते हैं कोई मुनिमहाराज दिखाई दिये।

नारायण श्री कृष्ण ने कहा-देखो! पार्थ अब धनुष उठाओ और युद्ध करना प्रारंभ करो, तुम्हारी विजय सुनिश्चित है। सामने देखो यथाजात् दिगम्बर मुनिमहाराज, उधर दुर्योधन के पक्ष से पीठ देकर तुम्हारी ओर आ रहे हैं, इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारी विजय सुनिश्चित है। तो ये मंगल शकुन जानकर के नारायण श्री कृष्ण ने युद्ध के पहले ही पाण्डवों के विजय की घोषणा कर दी थी।

महानुभाव! हम छोटी-छोटी यात्राओं के शकुन करते हैं, यदि कोई व्यक्ति घर से दुकान तक भी जा रहा हो सामने से किसी ने छींक दिया तो वह रुक जाता है, या कोई बिल्ली रास्ता काट गयी तो ठहर जाता है या अन्य कोई अपशकुन हो गया, कुत्ता भौंक रहा है, कौवा काँव-काँव कर रहा है या गीदड़ भौंक रहे हैं या कोई भी अशिष्ट ऐसी चीज दिखाई देती है तब व्यक्ति उस मंगलकार्य को सम्पन्न नहीं करता। पद्म पुराण में लिखा है रावण जब अंतिम बार युद्ध के लिये चला तब उसके सामने नाना प्रकार के अपशकुन हुये। उसे समझाने की चेष्टा की उसके मंत्रियों ने, शुभचिंतक महानुभावों ने किन्तु रावण अहंकार से युक्त होकर के युद्ध करने के लिये आगे बढ़ता ही चला गया, वह भी जान रहा था कि शायद युद्ध भयंकर है और आज का निर्णायक दिवस है।

अंतिम रात्रि में वह भी बड़ा व्याकुल है। अब एक तरफ धर्म है एक तरफ अधर्म। अधर्म धर्म के साथ कब तक युद्ध कर सकता है, पाप को तो झुकना ही पड़ेगा या मिटना ही पड़ेगा। कभी रावण सोचता है कि लक्ष्मण को शक्ति लगी पड़ी है, अकेला राम क्या करेगा भाई के वियोग में उसकी भी मृत्यु हो जायेगी, जब दोनों की मृत्यु हो जायेगी तो सीता अपने आप मुझे पति के रूप में स्वीकार कर लेगी। व्यक्ति सोचता बहुत है किन्तु जरूरी नहीं है कि जैसा सोचता है वैसा ही हो जाये। जब तक पुण्य का उदय नहीं होता है तब तक सोचे हुये विचारों की पूर्ति नहीं होती। पुण्य का उदय होता है तो मन में विचार आते ही उनकी पूर्ति हो जाती है। पाप के उदय में अच्छे कार्य, अच्छे विचार भी सम्पन्न नहीं हो सकते और पुण्य के उदय में वे सहज ही सम्पन्न हो जाते हैं।

रावण के पाप का उदय था ही, क्योंकि उसने पाप का कृत्य किया। वह चाहता है कि मैं उन्हें झुकाकर के उसके बाद पुनः उनकी सीता वापिस कर दूँगा किन्तु अहंकार के कारण वह युद्ध के लिए गया,

अपशकुन होने लगे, बस यह सोच करके के अंतिम युद्ध करके ही आना है, लक्ष्मण तो मर ही चुका होगा, राम शेष बचा है, वह भी मेरे हाथ आज समाप्त हो जायेगा या राम को बंदी बनाकर के सीता को वापिस करूँगा। रावण के सामने जब अपशकुन हुये तो उसकी परवाह किये बिना वह आगे बढ़ता चला गया।

महानुभाव! शकुन और अपशकुन हम जीवन की यात्रा में भी देख लें, तब नि:संदेह जीवन में आने वाले आकस्मिक उपद्रवों से, आपत्तियों से, संकटों से हम बच सकते हैं। यदि हमने उसकी परवाह नहीं की तब नि:संदेह हमारा जीवन किसी भी घटना का शिकार हो सकता है, आपदाग्रस्त हो सकता है, हमारा जीवन जो वरदान स्वरूप प्रतिभासित हो रहा है वह अभिशाप में कभी भी बदल सकता है इसीलिये जीवन की यात्रा प्रारंभ करने के पूर्व भी यदि हम अपने शुभ और अशुभ शकुन के बारे में विचार करें तो अच्छा है। एक ऐसा घट भी हो जिसे देखकर के हम अपने जीवन की यात्रा प्रारंभ करें, वह कौन सा मंगल कलश है जिस मंगल कलश के साथ जीवन की यात्रा सुखद हो सकती है। उस मंगल कलश की खोज करना है और जीवन यात्रा का प्रारंभ करने के पूर्व उस मंगल कलश को अपने साथ ही रखना है। केवल एक बार देखकर के ही आगे नहीं बढ़ना है। जैसे मंगल कलश आपने देख लिया और मान लिया यात्रा शुभ होगी, ऐसा अनुमान लगाते हैं, किन्तु जीवन यात्रा यह भी एक यात्रा है उस यात्रा का प्रारंभ आप करेंगे और सर्वप्रथम यात्रा के पड़ाव पर या आपका प्रथम कदम बाहर रखते समय आपको मंगल कलश दिखाई देता है, या कदम रखने के पूर्व ही आपको मंगल कलश दिखाई देता है जिससे सुनिश्चित हो जाये कि आपकी यात्रा मंगलमय हो।

वह कलश कौन सा है, उसे देखें तो सही कि वह मंगल कलश क्या है? लोक में मंगल कलश यह नाम दिया जाता है सामान्य कलश को, भावना भायी जाती है मंगल की, मंगल क्या है? मंगल का अर्थ

होता है जो पापों को गलाने वाला हो, मंगल अर्थात् जो पुण्य को देने वाला हो, जो हितकारी हो, जीवन में विद्यमान सभी पाप रूपी तत्त्वों को नष्ट करने वाला हो, परमात्मा बनाने वाला है, जो मेरी आत्मा में से बहिर्पदार्थों को निकालकर के आत्मा का आत्मा से बोध करा दे। कलश का अर्थ हुआ जो कलह का शमन करे। इसीलिये आप लोग मंगल कलश चाहते हैं चाहे चातुर्मास हो, चाहे विधन हो, चाहे कोई अनुष्ठान हो, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हो या कोई छोटा सा भी विधन करते हैं तब भी मंगल कलश की स्थापना करते हैं।

जैन पूजा पद्धति में तो यहाँ तक लिखा है कि प्रत्येक दिन के पूजन और अभिषेक के समय भी, विधन नहीं भी कर रहे हैं तब भी पाँच नहीं तो एक मंगल कलश की स्थापना नित्य करना चाहिये। मंगल कलश स्थापना करके ही अभिषेक शांतिधारा पूजन आदि करके, जब पूजन का विसर्जन करें तब वह मंगल कलश किसी को प्रदान किया जा सकता है या स्वयं ग्रहण करें। तो मंगलकलश मंगल करने वाला होता है ऐसा जन-सामान्य को विश्वास है इसीलिये प्रायःकर पहले चातुर्मास में कलश स्थापना की परम्परा नहीं थी, कुछ ही वर्षों से चातुर्मास में कलश स्थापना करने की परम्परा प्रारंभ हो गयी। परमपूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज आदि जो पूर्व में हुये वे प्रायःकर के मंगलकलश आदि की स्थापना नहीं करते थे, अपनी भक्तियों का पाठ कर लिया स्थापना हो जाती थी और सभा में श्रावकों को उपदेश दे दिया ज्यादा से ज्यादा हुआ तो साधुओं के करकमल में शास्त्र भेंट कर दिये यदि पिच्छी आदि जीर्ण-शीर्ण हो गयी तो वह भेंट करा दी या और कोई आवश्यकता है चटाई आदि भेंट कर दी, या साधु का पादप्रक्षालन करके पूजन कर ली, इतने आयोजन हो जाते थे, मंगलकलश की स्थापना नहीं करते थे। किंतु वर्तमान काल में श्रावक लोभ से सहित है, वह सोचता है मैं साधु की सेवा करूँगा, मुझे क्या मिलेगा, मुझे किसी लाभ की प्राप्ति होगी, तो ऐसा कोई प्रतीक चिह्न

प्राप्त हो जाये अब साधु अपने पास कुछ रखते नहीं, वे क्या दें तो बस यही भावना कि साधु यहाँ चार महीने रहेंगे, अतः मंगल कलश की स्थापना कर देते हैं, वह मंगल कलश जो जिनालय में विराजमान रहेगा, जहाँ पर लोग नित्य ही अभिषेक-शांतिधारा-पूजन आदि करेंगे, जहाँ पर नित्य विधन भी होंगे उनकी मंगल वर्गणायें लगभग 130 दिन तक उसमें समाविष्ट होंगी और वे पुण्य वर्गणायें उस कलश के साथ जहाँ भी पहुँचेंगी निःसंदेह वहाँ पर मंगल ही मंगल होगा। इसीलिये प्रायःकर के वर्तमान काल में सभी संघों में (कुछ एक संघों की कह नहीं सकते) चातुर्मास में मंगल कलश स्थापना करने की परम्परा है और दीपावली के दिन वे कलश अपने घर पर ले जाकर दीपावली पूजन पर रखते हैं, वे उत्साह के साथ उस पुण्य के कार्य में आगे बढ़ते हैं। दीपावली वर्ष का अंतिम दिन है और अगला दिन वर्ष का प्रारंभिक दिन है। वीर निर्वाण की अपेक्षा से वह वर्ष दीपावली पर पूर्ण होकर नव वर्ष प्रारंभ होता है।

महानुभाव! मंगल कलश आप रखते हैं, चाहे अपने गोदाम में रखते हों, चाहे दुकान में, घर में, पूजागृह में चाहे कहीं भी रखते हैं जिससे धर्म भावना की वृद्धि होती रहे और सुसंस्कार नष्ट न हों और कुसंस्कारों का आविर्भाव न हो सके। वह मंगल कलश हमारे जीवन में भी आये, ये मंगल कलश तो कुछ रुपया पैसा देकर के आप प्राप्त कर लेते हैं समाज की परम्परा के अनुसार से तो ये सामाजिक व्यवस्था है। कहीं समाज में जो व्यक्ति धार्मिक होते हैं उनके हाथ से कलश की स्थापना करा दी और उससे पैसों का मूल्यांकन न करके उसकी सेवाओं का मूल्यांकन करके भी समाज द्वारा मंगल कलश प्रदान किये जाते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो धन देने में भी समर्थ नहीं हैं या और भी विशेष सेवा नहीं कर सकते किन्तु मन से वे मंदिर की, साधु की सेवा में लगे हैं तो उन्हें भी समाज द्वारा सम्मान व मंगल कलश आदि दिये जाते हैं। तो ये मंगल कलश लौकिक कलश ही कहलाये

जो लोक मंगल करने वाले हैं किन्तु हम चलते हैं पारमार्थिक मंगल कलश की ओर जिससे हमारा पूरा जीवन मंगलमय हो, हमारे जीवन की यात्रा में मंगल कलश आ जाये, जिसमें जीवन मंगल ही मंगल, मंगलमय होता चला जाये।

कौन सा है वह मंगल कलश? तो जब भी जैनकुल में किसी बालक का जन्म होता है तो ऐसा मानते हैं कि अभी जन्म के समय से वह जैन नहीं बना, यद्यपि जब वह गर्भ में आया तब से ही आचार्य जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण में संस्कार की बात कही है, गर्भ में आने के पहले से ही संस्कार देना प्रारंभ हो जाता है और पुनः एक-एक क्रिया का संस्कार होता चला जाता है और जब बालक का जन्म होता है तब भी संस्कार, जन्म के बाद भी संस्कार और जब लगभग 45 दिन का हो जाता है तब वह प्रथम बार मंदिर आता है, और मंदिर में यदि कोई साधु संत होते हैं तो आप उनका आशीर्वाद उसे दिलाते हैं और निवेदन करते हैं कि आप अपने श्री मुख से इसे णमोकार मंत्र सुना दो, इसे जैनत्व के संस्कार दे दो जिससे यह जैन हो जाये।

श्वेताम्बर परम्परा में एक माँगलिक सुनाने का रिवाज है जब भी कोई व्यक्ति जाता है तो गुरु के चरणों में घुटने टेककर, हाथ जोड़कर बैठ जाता है और कहता है महाराज! माँगलिक सुना दीजिये, तो माँगलिक सुनाने के अर्थ में वे महाराज साहब उन्हें णमोकार मंत्र, चत्तारिदंडक सुना देते हैं या जिनवाणी का कोई अच्छा सा वाक्य बोल देते हैं, वह श्रावक हाथ जोड़कर माथा झुकाकर के तीन बार प्रणाम करता है और मानता है मेरा माँगलीक हो गया, महाराज के श्रीमुख से मैंने मंगलशब्द सुन लिये, किंतु दिगम्बरों में ये परम्परा थोड़ी सी कम है, यदि महाराज जी णमोकार मंत्र बोलना प्रारंभ कर देंगे, वे बोल नहीं पायेंगे णमो अरिहंताणं तब तक आप जल्दी से बोल देंगे 'णमो सिद्धाणं' आपको पहले से आता है इसीलिये आपकी सुनने की भावना कम रहती है और सुनाने की भावना ज्यादा रहती है किंतु विद्वत्वर दौलतराम जी ने लिखा है-

ताहि सुनो भवि मन थिर आन,
जो चाहो अपनो कल्याण॥

यदि अपना कल्याण चाहते हो तो पहले सुनो। क्या? तातैं दुःखहारी सुखकार, कहें सीख गुरु करुणा धार''

जो गुरुजन, मुनिराज करुणा धारण करके शिक्षा देते हैं उसे सुनो तो महानुभाव! श्रवण करने से कल्याण होता है, बोलने से कल्याण का कोई नियामक संबंध नहीं है इसीलिये अनंत केवली हो गये जिनकी दिव्यध्वनि नहीं खिरी किन्तु ऐसे एक भी साधक या सम्यग्दृष्टि श्रावक या परमेष्ठी या सिद्ध आज तक नहीं हुए जिसने बिना सुने अपना कल्याण कर लिया हो। मौन की परम्परा कल्याण के मार्ग में तीर्थंकर प्रभु तभी से प्रारंभ कर देते हैं जब दीक्षा ग्रहण करते हैं उसी समय से मौन ले लेते हैं और केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर भी श्री मुख से नहीं बोलते सर्वांग से दिव्यध्वनि खिरती है तो भी मौन ही रहते हैं। जिस दिन दीक्षा लेने के लिये गये, उस दिन उन्होंने अपना राज्यभार सौंप दिया वही उनके अंतिम शब्द रहते हैं बाद में दीक्षा लेने के उपरांत उन्हें कोई शब्द बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे सिद्ध भी बन गये तब भी पुनः बोलते नहीं, अब तो शरीर से रहित, कर्मों से रहित हो गये। तो संसार में रहते अंतिम शब्द वही होते हैं जो दीक्षा से पूर्व उनके श्री मुख से निकलते हैं। सिद्धों की साक्षी में सिद्धों का स्मरण करते हुये व सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर वे दीक्षा स्वीकार करते हैं, ऊँ नमः सिद्धेभ्यः कहते हुये पंचमुष्टी केशलोंच करते हैं।

महानुभाव! तो सबसे पहले हमारी जीवन यात्रा का शुभारंभ होता है, सबसे पहला शब्द जो मंगल कलश की तरह से हमारे लिये काम आता है वह है महामंत्र णमोकार। जिसके जीवन में महामंत्र णमोकार है उसके जीवन की यात्रा सकुशल होगी इसमें किसी भी प्रकार का किंचित् भी संदेह नहीं है और जिनके पास जीवन रूपी यात्रा में णमोकार मंत्र नहीं है उन्हें पग-पग पर, क्षण क्षण में कहाँ कौन सी

प्रतिकूलता आ जाये इसे कौन जानता है। कभी भी कोई भी प्रतिकूलता आ सकती है। णमोकार ऐसा महामंत्र है जिसको जैन कुल में पैदा हुआ प्रत्येक बालक-बालिका उच्चारण करते हैं-

एसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होई-मंगलं॥

यह णमोकार ऐसा पंचनमस्कार मंत्र है जो कि सभी प्रकार के विघ्न-बाधाओं का, अंतरायों का, आपात्ति-विपत्ति जितनी भी दुरावस्था है उन सबका यह नाश करने वाला है। जिस प्रकार कितना भी कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर लिया हो, अग्नि सबको स्वाहा कर देती है किन्तु अग्नि यदि संयमित है तो पूज्यनीय है, असंयमित है तो कूड़ा कचरा जलाने के साथ-साथ हो सकता है भवन को भी जला दे इसीलिये दीपक से तो आप पूजा करते हैं, सूर्य विमान में स्थित जिनेन्द्र भगवान् की पूजा भी करते हैं किन्तु अग्नि की लपटों की पूजा कोई नहीं करता, क्योंकि वह अनुशासन विहीन है ऐसे ही हमारा और आपका जीवन यदि अनुशासित व संयमित है धर्म के साथ है तो वह जीवन भी अर्चनीय, पूजनीय व प्रशंसनीय हो जाता है और यदि मर्यादा से विहीन है, संयम से विहीन है तो अपने जीवन में कितना भी पुण्य का आश्रव किया जाये, पुण्य का आश्रव करने के बावजूद भी वह जीवन प्रशंसनीय, पूज्यनीय, अर्चनीय व वंदनीय नहीं होता।

महानुभाव! हमारे जीवन की प्रथम यात्रा का प्रथम मंगल करने वाला यदि कोई मंगल कलश है तो वह है 'णमोकार महामंत्र'।

णमोकार महामंत्र के बारे में लिखा है-

जिण-सासणस्स सारो, चउदस-पुव्वाण समुद्धारो
जस्समणे णमोक्कारो, तस्स भव-भयं किं कुणइ ॥

जिसके मन में णमोकार मंत्र विद्यमान है समझ लेना चाहिये उसके मन में द्वादशांग का सार विद्यमान है, जो णमोकार मंत्र का ध्यान स्मरण

करता है वह जिनशासन के समस्त रहस्य को जानता है, ग्यारह अंग, 14 पूर्व के रहस्य को जानता है और जिसके पास णमोकार मंत्र है तीन लोक की कोई भी शक्ति उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। यह पंचनमस्कार मंत्र सभी पापों को नष्ट करने वाला है। जब आपके जीवन में णमोकार मंत्र रूपी मंगलकलश नहीं होता है तब आपको बहुत सारे कलशों को इकट्ठा करना पड़ता है और जब चैतन्य मंगलकलश रूप णमोकार मंत्र का अनुचिंतन आपकी चेतना में, आपके भावों में नित्य निरन्तर, मुहुर-मुहुर बार-बार अभीक्ष्ण रूप से चल रहा है, जाप चल रहा है, निरंतर ध्यान चल रहा है तब तीन लोक में ऐसी कौन सी शक्ति है जो आपकी अनुकूलता को प्रतिकूलता में बदल दे, ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आपके सामने विघ्न बाधा खड़ी कर सके, ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपके जीवन में अंधकार पैदा कर सके।

वह णमोकार महामंत्र शाश्वत नंदादीप है, प्रकाश पुंज है। वह महामंत्र अचिन्त्य शक्ति का कोष है उसके बारे में कहा है कि चौरासी लाख मंत्रों का एक मूलमंत्र है तो णमोकार महामंत्र। यदि कोई व्यक्ति अन्य चौरासी लाख मंत्रों की जाप लगाता है और एक व्यक्ति णमोकार मंत्र की जाप लगाता है तो दोनों का फल समान है। णमोकार मंत्र तो एक हीरे की तरह से है और अन्यमंत्र सामान्य धातु के टुकड़े, काँच या पाषाण के टुकड़ों के समान हो सकता है। णमोकार मंत्र रूपी हीरा जिसके पास है वह नि:संदेह मोक्षमार्ग का वीरा है। वह कर्मों को जीतने वाला रणधीरा है। और जिसके पास वह णमोकार मंत्र रूपी हीरा नहीं है वह भटका हुआ राही है। इसीलिये णमोकार मंत्र को मात्र कंठ तक नहीं बल्कि अपने प्रत्येक प्रदेश में बसाओ जब आपके पास विशेष संकट आता है तब तो कहते हो भगवान् बचाओ, णमोकार मंत्र मन ही मन में पढ़ते हो या जोर से चिल्लाकर पढ़ते हो किन्तु हम आपसे इतना कहना चाहते हैं चाहे जीवन में अनुकूलता के क्षण आयें और चाहे प्रतिकूलता के क्षण आयें णमोकार मंत्र को कभी भी विस्मरित

नहीं करना है। णमोकार मंत्र तो निरन्तर ही चलता रहना चाहिये जैसे श्वाँस लेना भूल जायें तो जीवन नहीं जी पायेंगे ये शरीर छूट जायेगा ऐसे ही आत्मा की जीवंतता के लिये णमोकार मंत्र का स्मरण अहर्निश करो, रात में पढ़ते-पढ़ते भी सो जाओ रात में स्वप्न भी आयेंगे तो णमोकार मंत्र से सम्बंधित आयेंगे।

णमोकार मंत्र पढ़ते-पढ़ते जब पाँचों परमेष्ठियों का चिंतन करता है तब नि:संदेह उसके जीवन में पाँच पाप ठहर नहीं पाते। सिद्धों का चिंतन करते ही ऐसा लगता है कि हिंसा नाम सुनते ही भाग जाती है, अरिहंतों का स्मरण करते ही ऐसा लगता है कि असत्य जीवन में टिक नहीं पायेगा, आचार्यों का चिंतन करते ही अचौर्य भाव आत्मा में प्रादुर्भूत हो जाता है, उपाध्याय का स्मरण करते ही आत्मा में रमण करने की कला आ जाती है, अब्रह्म से व्यक्ति मुक्ति पा लेता है और साधु परमेष्ठी का चिंतन करते ही वह व्यक्ति स्वयं ही नि:संग होने लगता है परिग्रह का त्याग करने लगता है। यह पंचपरमेष्ठी का चिंतन नि:संदेह पंचमगति को देने वाला है, पंचम ज्ञान को देने वाला है इसीलिये निरंतर इस जीवंत मंगल कलश को अपनी जीवनयात्रा में हमेशा साथ में रखें। आपकी यात्रा मंगलमय हो और आप निराकुल रूप से अपने गंतव्य स्थल तक पहुँचें इन्हीं मंगलभावनाओं के साथ.....।।

''जैनम् जयतु शासनम्''

सदाचार की महिमा

महानुभाव! संसार में जो जन्मा है वह अपना जीवन अवश्य जीता है, चाहे पूरा जीवन जीये या अकाल मृत्यु आने से अधूरा जीवन जीये। जितने भी जीव संसार में जन्म लेते हैं सभी मरने से पहले जीते हैं, मरने के बाद उनका दूसरा जन्म होता है उसे जीते हैं पुनः मृत्यु को प्राप्त करते हैं। आप कहें हम जीवन जी रहे हैं, तो ये कोई बहुत बड़ी बात थोड़े ही है। जीवन संसार का कौन-सा प्राणी नहीं जी रहा है, यदि आप जीवन जी रहे हैं तब निःसंदेह आप कोई बहुत बड़ा काम नहीं कर रहे। तिर्यंच भी जीवन जीता है, निगोदिया जीव भी जीवन जीता है, सभी जलचर, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक भी जीते हैं। नारकी भी जीवन जीते हैं, वैमानिक, भवनवासी, ज्योतिषी, वाण व्यंतर भी जीवन जीते हैं। भोगभूमि, कुभोगभूमि के जीव भी जीवन जीते हैं फिर आपके जीवन में और उनके जीवन में क्या अंतर रहा? यदि आप सभी में अपने आपको श्रेष्ठ, सम्मानीय, अभिनंदनीय, प्रशंसनीय, आदर्श प्रस्तुत करना चाहें तो मेरी दृष्टि में आपका तर्क अधूरा है। हाँ एक अंतर हो सकता है संसार के अन्य प्राणियों में और हम में, जीवन तो संसार का प्रत्येक प्राणी जीता है किंतु अच्छा जीवन कोई-कोई जीता है, अच्छा जीवन जीने वाले कम लोग हैं।

अच्छा शब्द ये एक विशेषण है अच्छा जीवन कोई-कोई जीता है। अच्छा जीवन जीने वाले व्यक्ति संसार के लिए आदर्श माने जाते हैं। 'अच्छा जीवन' कोई नारकी जीना चाहे वह नहीं जी सकता, अच्छा जीवन कोई एकेन्द्रियादि से चतुरीन्द्रियादि जीव जी नहीं सकते, क्योंकि उनके पास अच्छा-बुरा जानने की, भेद करने की प्रज्ञा ही नहीं है क्योंकि वहाँ मन ही नहीं है जिससे शिक्षा, अलाप, उपदेश, तर्क, बुद्धि आदि को वह ग्रहण कर सकें। यह सिर्फ और सिर्फ मनुष्य के लिए ही सम्भव है, वह अच्छा जीवन जीने का नाम है **'सदाचार'**।

सदाचार अर्थात् जिसके पास सदा चार बातें होती हैं, सदा अर्थात् सदैव जिसके पास ये चार बातें होती हैं वही सदाचारी जीवन जी सकता है, उसी का जीवन सदाचार से युक्त हो सकता है। ये चार बातें कौन सी हैं? **शरीर से सत्क्रिया, वचनों से सद्व्यवहार, मन में सद्विचार और सत् आहार अर्थात् शुद्ध आहार,** ये चार बातें जिसके जीवन में होती हैं वह सदैव सदाचारी होता है जिसके जीवन में यह चार बातें नहीं वह सदाचारी नहीं।

1. सत्कार्यः–सत्कार करना भी सत्कार्य है–सत्पुरुषों का ही आदर–सत्कार होता है। सत्कार्य का आशय होता है, चाहे प्रभु पूजा हो या गुरुसेवा, चाहे जिनवाणी की सेवा हो या उपासना, चाहे परोपकार हो, मैत्री हो, प्रमोदादि भावना आदि का चिंतन सब सत्कार्य हैं। तीर्थयात्रा भी सत्कार्य है, धर्म की प्रभावना करना भी सत्कार्य है, ज्ञान की उपासना करना भी सत्कार्य है। आत्मा को आत्मा में लीन कर लेना, ध्यान आदि जितने भी कार्य हमें असत् से सत् की ओर ले जायें वे सभी सत्कार्य हैं। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जायें, दुःखों से सुखों की ओर ले जायें, पाप से पुण्य की ओर ले जायें, अधर्म से उठाकर धर्म में ले जायें वे सभी कार्य सत्कार्य हैं।

जो व्यक्ति सत्कार्य करता है उसका सत्कार होता है। जो दूसरों का सत्कार करता है, वही अपनी आत्मा का सत्कार कर सकता है और जिसकी आत्मा सत्कार के योग्य है वही आत्मा पूज्य है चाहे वह सत्कार्य करे या न करे फिर भी उसकी आत्मा पूज्य है। भगवान् की पूज्यता तुम्हारी पूजा पर निर्भर नहीं है, भगवान् की पूज्यता उनकी स्वयं की पूज्यता है। उन्होंने घातिया–अघातिया कर्मों को नष्ट किया, संसार से पार हुए इसीलिए उनकी आत्मा पूज्य हो गई, तुम उनका अभिषेक पूजन करो चाहे न करो वह तो पूज्य हैं। कोई व्यक्ति कहने लगे– ''कि मैं मंदिर में पूजा करने न जाऊँ तो भगवान् अपूज्य हो जाएँगे'' यह उसकी अल्पज्ञता है, मूर्खता है, किसी की पूजा करने न करने से कोई

पूज्य-अपूज्य नहीं होता है। संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने ही गुणों से, अपने ही स्वभाव से, अपने ही धर्म से, अपने ही संयम चारित्र से पूज्यता को प्राप्त होता है। स्वयं में ही कोई विशेषता नहीं है, तो क्या दुनिया के पूजने से वह व्यक्ति पूज्य हो जाएगा? जो जैसा है वैसा ही रहेगा। कोई व्यक्ति किसी के स्वभाव को छीन नहीं सकता है, और किसी पर जबरदस्ती दवाब से थोप नहीं सकता।

यह शाश्वत सिद्धान्त है कि तुम्हारे स्वभाव को, तुम्हारे गुणों को, तुम्हारी पर्यायों को, तुम्हारी अच्छाईयों-बुराईयों को कोई छीन नहीं सकता। वह अपने अंदर प्रकट तो कर सकता है किन्तु छीन नहीं सकता, तुम्हें बुराई से अच्छाई की ओर ले जाने की प्रेरणा तो दे सकता है किन्तु तुम्हारे ऊपर थोप नहीं सकता, जब तक कि तुम उसे स्वीकार न करो।

यदि सदाचारमय जीवन जीना है तो सबसे पहली शर्त है 'सत्कार्य' इसके बिना जीवन में सदाचार आ ही नहीं सकता, कोई व्यक्ति सोचे मैं संत-महात्मा बन गया और संत-महात्मा बनकर भी बुद्धिपूर्वक अन्य कार्य करता हूँ तो क्या वह सदाचारी हो सकता है? सत्कार्य किये बिना कोई सदाचारी हो ही नहीं सकता। जैसे ऊष्णता के बिना अग्नि हो ही नहीं सकती, शीतलता के बिना जल हो ही नहीं सकता, मिठास के बिना कोई मीठा हो ही नहीं सकता ऐसे ही सत्कार्य के बिना सदाचारी हो ही नहीं सकता।

2. सद्व्यवहारः- सत्कार्य के साथ-साथ सद्व्यवहार भी हो। सामने वाला चाहे कितना ही सत्कार्य करता हो, पूजा-पाठ, स्वाध्याय आदि करता हो किन्तु भाषा इतनी कटु कि जब बोले तो लगे मानो अंगारे झड़ पड़े हों, करील के काँटे चुभ गये हों, इतनी कड़वी भाषा मानो किसी ने तेजाब ही डाल दिया हो, बबूल के काँटे के समान शब्द जिन्हें सुनकर ऐसा लगे कि किसी ने कान में शीशा पिघला कर डाल दिया हो। जो दूसरों से कटु वचन, निंद्य वचन, कर्कश वचन बोले क्या वह सदाचारी हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

व्यवहार इतना अच्छा हो कि व्यक्ति उस व्यवहार को याद कर तुम्हें याद करता रहे। एक व्यक्ति ट्रेन में यात्रा कर रहा था, दूसरा व्यक्ति अगले स्टेशन से चढ़ा और चढ़ते ही इतने बुरे अपशब्दों का प्रयोग किया जो उचित नहीं थे और बड़बड़ाता हुआ बैठ गया। किसी ने कुछ नहीं कहा, जब वह उतरने लगा तब ट्रेन में बैठे एक व्यक्ति ने उससे कहा-भईया! तुम्हारी कोई चीज रह गई है, वह लेते जाओ, तब उसने पूछा क्या रह गया? व्यक्ति ने कहा ''आपका बुरा व्यवहार'' वह वचन जो कि इस ट्रेन में बैठे सभी व्यक्तियों को जीवन भर याद रहेंगे। जो व्यवहार तुमने किया है वह कोई भूल नहीं सकता है। बुरा व्यवहार और अच्छा व्यवहार व्यक्ति के जीवन में स्थाई छाप छोड़ने वाला होता है। व्यक्ति चला जाये किन्तु उसका व्यवहार जीवित रहता है, व्यक्ति के शरीर को भले ही लकड़ी के बीच में रखकर जला दो किन्तु उसका व्यवहार जलाये से जलता नहीं है। किसी के शब्द चुभ जायें तो क्या हृदय में से निकल जाते हैं? तलवार का घाव तो भर जाता है किन्तु शब्दों का घाव नहीं भरता।

एक ब्राह्मण जंगल में चला जा रहा था, मार्ग में उसे शेर दिखाई दिया, शेर के पैर में काँटा लगा था। ब्राह्मण पहले तो डर गया किन्तु जब शेर को प्रार्थना, दया व याचना की दृष्टि से भरा हुआ देखा तो कृपा, करुणादृष्टि पाकर ब्राह्मण ने डरते-डरते कहा-भाई शेर! तू है तो क्रूर हिंसक जानवर किन्तु तू यहाँ दुःखी खड़ा है, बता मैं तेरी क्या सहायता करूँ? वह शेर लड़खड़ाते हुए ब्राह्मण के पास पहुँच गया, उसने उसे काँटा दिखाया। ब्राह्मण ने कहा-तू चाहे मुझे मार दे या कुछ भी करे किंतु मैं तेरा काँटा निकाल देता हूँ। मैं तो तेरे साथ भला ही करुँगा और कहकर शेर का काँटा निकाल दिया। (शेर आदमी की भाषा समझते हैं) शेर ने उसके प्रति बड़ी कृतज्ञता ज्ञापित की। ब्राह्मण ने कहा-मैं गरीब हूँ, लकड़हारा हूँ, लकड़ी काटकर अपना गुजारा चलाता हूँ। शेर ने लकड़ियों का गट्ठर अपनी पीठ पर रखवाया और

उसके साथ चलने लगा, वह ब्राह्मण उसकी पीठ पर लकड़ी रखकर बेचने लगा और बहुत अमीर हो गया। एक दिन ब्राह्मण की लड़की की शादी थी उसमें बहुत सारे रिश्तेदार नगर के लोग आये थे, सबने पूछा तुम तो बड़े गरीब थे, आज इतना बड़ा भोज किया, कहाँ से तेरे पास सम्पत्ति आ गई? कहीं जमीन में गढ़ा धन मिल गया? बोला-कुछ नहीं मैंने शेर पाल लिया। बोले शेर! तुम्हें डर नहीं लगता, वह बोला काहे का डर, शेर क्या है, वह तो कुत्ते जैसा है। अब ये शब्द शेर ने सुन लिये, शेर गुस्सा होकर वहाँ से चल दिया जंगल में। ब्राह्मण ने देखा मेरा प्रिय मित्र चला गया, वह उसे मनाने के लिए उसके पीछे गया और शेर से बोला, चलो। शेर बोला-अभी तुम यहाँ से चले जाओ, चर्चा बाद में करेंगे। वह ब्राह्मण बाद में आया बोला भाई क्या बात है-गलती हो गई मुझे क्षमा कर देना, बोला क्षमा एक शर्त पर करूँगा, एक कुल्हाड़ी उठा और मेरे सिर पर चोट मार, ब्राह्मण घबड़ा गया, कुल्हाड़ी! शेर बोला-हाँ। ब्राह्मण बोला-मैं ऐसा नहीं कर सकता। शेर बोला नहीं किया तो मैं तुझे खा लूँगा। ब्राह्मण ने अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए उसके सिर पर हल्की सी कुल्हाड़ी मार दी और उसके सिर पर हल्का सा घाव हो गया। उसने ब्राह्मण से कहा-तूने जो मेरे पैर में काँटा चुभा था उसे निकाला था, मैं तेरा उपकार मान रहा था, इस कुल्हाड़ी के चोट का घाव तो भर जाएगा किन्तु तूने जो कहा था कि मैंने कुत्ता पाल रखा है, गधा सा है वह शब्द मुझे चुभ गये हैं मेरा वो घाव भरा नहीं जा सकता है। महानुभाव! वचन का घाव बहुत गहरा होता है, संसार में ऐसा कोई तीर नहीं है जो इतना गहरा घाव बना सके। जितना गहरा वचन का घाव होता है उतना बाणों का नहीं। वाक्य प्रहार सबसे ज्यादा चोट पहुँचाते हैं।

दूसरी शर्त है-**सद्व्यवहार**-जो जीवन में सद्व्यवहार करता है, नियम से उसे भी सद्व्यवहार मिलता है, जो अपने जीवन में सदैव मिष्ट-शिष्ट बोलता है, उसे ही अपने जीवन में मिष्ट और शिष्ट वचन

सुनने को मिलते हैं। नमक देकर मीठा खाने कहीं नहीं मिलता, दूसरे का गला पकड़कर उसके मुँह में जबरदस्ती नमक मिर्च भर दो तो ये उम्मीद मत करना कि तुम्हारे मुँह में कोई जबरदस्ती रसगुल्ला डालेगा। तुमने नमक मला है किसी के घावों पर तो वह भी नमक से भयंकर कोई चीज मलने का प्रयास करेगा। तीसरी बात है-

3. सद् विचारः- सद् विचार यदि तुम्हारे जीवन में आ गये तो समझो तुम्हारा जीवन ही बदल गया, तुम जो कुछ भी बनना चाहते हो पहले वैसा सोचना प्रारम्भ कर दो, वैसे बन जाओगे। व्यक्ति पहले भावों से वैसा बनता है तब द्रव्य में वैसी परिणति होती है। कुम्हार मटका बनाता है, उससे पहले अपने मन का मटका बना लेता है, तब मिट्टी लगाकर बाद में मटका बनाना प्रारम्भ करता है। कोई व्यक्ति मकान बनाता है तो उससे पूर्व उसका नक्शा अपने दिमाग में खींच लेता है, माँ रोटी बनाने/रसोई बनाने के पहले सोच लेती है कि क्या-क्या बनाना है, पहले मन में बना लेती है तब बाद में रसोई में बनाती है। पहले भावों में बनता है इसीलिए व्यक्ति जैसा बनना चाहता है वैसा सोचना प्रारम्भ कर दे। बस, कुछ भी न करो सोचते जाओ-सोचते जाओ एक दिन अवश्य ऐसा आएगा, जैसा तुम बनने का सोचते हो वैसा तुम बन जाओगे। तुम क्या हो हम नहीं जानते किन्तु आपके विचारों से हम जान सकते हैं कि तुम क्या हो? जैसे तुम्हारे विचार हैं वही तुम हो, जैसे तुम्हारे वचन हैं वही तुम हो, जैसी तुम्हारी क्रिया है वही तुम हो, विचार तुमसे अलग नहीं हैं वे तुमसे अनुस्यूत हैं, अखण्ड हैं, मिले हुए हैं। इसीलिए तुम भी वही हो जो तुम्हारे वचन, विचार और क्रियायें हैं। यदि किसी मिष्ठान में मीठा पड़ा हुआ है तो मीठा तो उसमें है किन्तु कोई कहे कि ''मिष्ठान में मीठा तो पड़ा हुआ है किन्तु उसमें है नहीं'', अरे ऐसा कैसे हो सकता है यदि मिष्ठान में मीठा पड़ा हुआ है तो वह मीठा ही है।

किसी में नमक पड़ा है तो वह नमकीन ही है, घी पड़ा है तो चिकनाई ही है। जो जिसमें है वह उसमय ही हो जाता है। विचार व्यक्ति के जीवन के निर्माण की आधारशिला होती है। व्यक्ति अपने विचारों को बदले उसकी आदतें बदल जाती हैं, व्यक्ति अपने विचारों को बदले उसका व्यवहार बदल जाता है। व्यक्ति अपने विचारों को बदले उसकी क्रियायें बदल जाती हैं, उसके शरीर के सभी परमाणु बदल जाते हैं। वैज्ञानिक लोग भी कहते हैं ''7 वर्ष में तुम्हारे शरीर के पूरे परमाणु बदल सकते हैं।'' बचपन में तुम्हारा शरीर कैसा था, 7 वर्ष के बाद पूर्ण रूप से बदला जा सकता है, यदि अपने पूरे माहौल को बदलते जाओ तो 7 साल बाद लोग तुम्हे पहचान न पायेंगे कि तुम वही हो या दूसरे हो। किन्तु महानुभाव! बदलने का केवल एक ही क्रम है वह है ''विचार''। विचार ही एक ऐसी चाबी है जिसके माध्यम से अंदर वाले सभी ताले खोले जा सकते हैं। विचार पहली चाबी है जिससे पहला द्वार खुलता है, पहला द्वार खुले तब तो आगे के द्वार खुलें। यदि विचारों को नहीं बदला तो कुछ भी बदलना शक्य नही है। महानुभाव! अगली चौथी बात है-

4. सद्आहार:- आहार समीचीन, उचित, स्वास्थ्य के अनुकूल हो। इन सबका आधार अच्छा हो तो सब कुछ अच्छा होगा।

''जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन,
जैसा पीवे पानी वैसी होगी वाणी।''

खान-पान का प्रभाव पड़ता है, इसीलिए कई बार हम कहते हैं अपना खान-पान सुधारो तुम्हारा खानदान स्वत: ही सुधर जाएगा और जिसका खान-पान बिगड़ जाएगा उसका खानदान नियम से बिगड़ेगा। जिसकी रोटी शुद्ध है उसकी बेटी शुद्ध रहेगी। जिसकी रोटी अशुद्ध हो गयी उसकी बेटी अशुद्ध हो जायेगी। घर-घर में रसोई होना चाहिए और वह रसोई जिसमें रस होता है चाहे सूखे टिक्कर ही क्यों न हों, नमक सा खारा हो तब भी उसमें रस होता है। पहले रसोई में कोई जूते-चप्पल

पहनकर नहीं जाता था, कोई बिना नहाये नहीं जाता था किन्तु आज चौका ही नहीं रहा, जहाँ पर चार प्रकार की शुद्धि (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) होती थी। आज तो किचन है जहाँ दिन-रात किच-किच मची रहती है। रसोई की शुद्धि हमारी अंतरंग की शुद्धि का कारण है। **भगवान् की मूर्ति यदि शुद्ध है तो भक्त का हृदय भी चमकता रहेगा यदि भगवान् का शिखर कलश चमकता रहेगा तो भक्त की प्रतिष्ठा भी ऊँची रहेगी, यदि भगवान् का शिखर, कलश, ध्वजा खण्डित रहेंगे तो भक्त की प्रतिष्ठा भी खण्डित रहेगी।** ऐसे ही जिसकी रसोई में कमी रहेगी उसके जीवन में कभी कोई पूर्ति कर नहीं सकता। जिसकी रसोई में बरक्कत रहती है उसके जीवन में भी बरक्कत रहती है और रसोई में कमी पड़ गई तो जीवन में बरक्कत नहीं हो सकती। यदि कोई सोचे कि आठ व्यक्ति घर में हैं, पाँच का भोजन बना ले तो वे पाँच भी अपूर्ण रह जायेंगे। दस का भोजन बनाओ, एक-दो अतिरिक्त भी आ जायें तो वह भी खा लें। जो अपने परिवार के लिए पूरा न बना पाए, जिस महिला की रसोई में एक रोटी भी कम पड़ गई तो समझो वह अपने परिवार को दरिद्रता की ओर धकेल रही है, उसके घर में कंगाली स्थायी निवास कर रही है और जिस महिला की रसोई में सुबह-शाम एक-आध रोटी बचे भले ही गाय को देनी पड़े उसके घर में कभी भी कमी नहीं आती।

आहार शुद्ध होना चाहिए। शुद्ध आहार पर ही शुद्ध विचार आधारित होते हैं, शुद्ध आहार पर ही आधारित है सद्व्यवहार, शुद्ध आहार पर ही आधारित है सत्कार्य। माँस खाले वाला व्यक्ति क्या दया का भाव रखेगा और क्या जीव रक्षा का भाव रखेगा? खानपान का बहुत प्रभाव पड़ता है, जैसा खाता है वैसा ही माँगता है, यदि गंदी चीज माँग रहा है तो उसका अंतरंग गंदा है। लोग कहते हैं-

''तनु जिन मंदिर''

''मन एक मंदिर है'' लेकिन कब? जब मन्दिर में भगवान् होता

है तभी तो मंदिर कहलाता है, यदि कोई बिल्डिंग खड़ी कर दी, न वेदी है, न भगवान् हैं, न शिखर है, न ध्वजा है, न कलश है उसे मंदिर कहोगे क्या? कम से कम भगवान् तो हों, बिना भगवान् के मंदिर नहीं हो सकता। आपका मन भी मंदिर बन सकता है किन्तु तभी जब उसमें भगवान् का वास हो। जिस मन में मार-काट चल रही है तो उसे मंदिर कहोगे क्या? वह तो बूचड़खाना कहना चाहिए, जिस मन में दुकानदारी चल रही हो उसे दुकान कहेंगे। जिस मन में जो चल रहा है वही तो तुम्हारा मन कहलायेगा। आपका मन, मंदिर जैसा कैसे हो गया? यदि इन्हें मंदिर कहोगे तो मंदिर को क्या कहोगे? महानुभाव! मन पर आधारित है तन, और मन आधारित है आहार पर। वचन भोजन प्राप्त करता है आहार से, क्रिया भोजन प्राप्त करती है आहार से। आहार शरीर, मन व वचनों के लिए आवश्यक है। चेतना के लिए आहार आवश्यक नहीं है, कोई अवधिज्ञानी मुनिमहाराज उपवास करके भी अच्छा ध्यान लगा सकते हैं किन्तु व्यक्ति यदि भोजन न करे तो शरीर शिथिल हो जाएगा, व्यक्ति यदि भोजन न करे तो ओजस्वी वाणी भी शिथिल हो जाएगी, मन धर्म ध्यान में न लगेगा। भोजन मन, वचन, काय तीनों के लिए जरूरी है। जैसा खाएगा वैसा ही तो निकालेगा।

जलेन जनितं पंकं, जलेनपरिशुद्ध्यति।
चित्तेन जनितं कर्म, चित्तेन परिशुद्ध्यति॥

जल से ही कीचड़ पैदा होती है और जल से ही कीचड़ धुलती है इसी प्रकार चित्त से ही कर्म पैदा होते हैं और चित्त से ही कर्म धुल जाते हैं। दीपक क्या खाता है? दीपक अंधेरे को खाता है, इसीलिए कालिमा को पैदा करता है, वह जैसा भक्षण करेगा वैसा ही तो परिणाम आएगा। यदि दूध शक्कर को खाएगा तो मीठा हो जाएगा, ऐसे ही हमारा शरीर, हमारा मन, हमारा वचन जैसा भी खाता है, वैसा ही हो जाता है। इसीलिए आहार पर बहुत जोर दिया, बिना आहार के कुछ नहीं है।

महानुभाव! ये चार बातें जिसके पास हैं उस ही के पास सदाचार है, जिसके पास ये चार बातें नहीं उसके पास सदाचार नहीं और आचार तो जीवन का प्राण है, प्राणों का प्राण है, चेतना की चेतना है, प्राणवायु की प्राणवायु है इसीलिए आचार्यों ने बारह अंगों में से पहला अंग कौन-सा रखा ''पहला आचारांग बखानो'', और पहले का बहुत महत्त्व होता है, चाहे पहले कोई भी चीज है-आपने देखा दस धर्मों में पहला कौनसा धर्म रखा-उत्तम क्षमा, पाँच महाव्रतों में अहिंसा, रत्नत्रय में सम्यक्दर्शन, इन्द्रियों में स्पर्शन, गुप्तियों में मनोगुप्ति, भावनाओं में अनित्य भावना, तीर्थंकर की 16 कारण भावनाओं में पहली भावना दर्शन विशुद्धि, प्रतिमाओं में दर्शन प्रतिमा, जो कुछ भी नम्बर एक पर रखा वह महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा के बिना चारों व्रत बेकार हैं, अहिंसा नहीं तो सत्य नहीं हो सकता, अचौर्य व्रत नहीं, ब्रह्मचर्य नहीं हो सकता, अपरिग्रही नहीं हो सकता। ऐसे ही 16 कारण भावनाओं में दर्शन विशुद्धि नहीं तो 15 भावना नहीं हो सकती। बारह भावना में अनित्य भावना नहीं तो बारह भावना नहीं। इसी प्रकार से स्पर्शन इन्द्रिय पर विजय नहीं है तो अन्य इन्द्रिय पर विजय करना मुश्किल हो जाएगा। जैसे ये पहले-पहले महत्त्वपूर्ण होते हैं उसी तरह साधु के 7 आवश्यक कर्त्तव्यों में समता पहले है तो श्रावक के 6 आवश्यक में देवपूजा पहले है।

तो महानुभाव! आचारांग-क्या है, अंग अर्थात हिस्सा, अवयव, पार्ट। द्वादशांग का पहला अंग है आचारांग, यदि वस्तु का पहला पार्ट ही न हो तो पूरी वस्तु ही अनुपयोगी है या अपनी सार्थकता को प्रदान करने में असमर्थ है। जिस प्रकार सम्यग्दर्शन का प्रथम अंग निःशंकित है उसके अभाव में सम्यग्दर्शन संसार का उच्छेद नहीं कर सकता। आ. समंतभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है-

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं, दर्शनं जन्मसन्ततिम्।
न हि मंत्रोऽक्षरन्यूनो, निहन्ति विषवेदनाम्॥

जिस प्रकार यदि मंत्र में एक भी अक्षर कम हो तो वह विष की वेदना को दूर नहीं कर सकता उसी प्रकार आठ अंगों में से एक भी अंग से हीन सम्यग्दर्शन संसार का उच्छेद करने में समर्थ नहीं है, जन्म की सन्तति को छेद नहीं सकता तो अन्य 7 अंग क्या कर सकेंगे। यदि शरीर के ऊपर का हिस्सा आनन, वदन, चेहरा नहीं है तो पूरा शरीर ही बेकार है और चेहरा भी हो किंतु आँखें न हों तो चेहरा बेकार है। ऐसे ही आचारांग के बिना समझे 11 अंग भी कार्यकारी नहीं हो सकते।

सदाचार की आचार्यों ने स्तुति की है सदाचार को ही बंधु कहा, सदाचार को ही मित्र कहा, सदाचार को ही माता-पिता कहा, सदाचार को ही ज्ञान कहा, सदाचार को ही सब कुछ कहा। आचार ही एक ऐसी चीज है जिसके माध्यम से व्यक्ति के अच्छे-बुरे की पहचान होती है। अच्छा व्यक्ति वह है जो अच्छे कार्य करता है, वह नहीं जो सिर्फ अच्छी बात बोलता है, वरना अच्छी बातें तो दीवारों पर भी लिखी होती हैं। अच्छी बातें तो पुस्तकों पर, साइन बोर्ड पर भी लिखी होती हैं किन्तु वे लिखी हैं-**''पर उपदेश कुशल बहु तेरे, जे आचरे ते नर न घनेरे।''**

जो उसे आचरण में लायें ऐसे मनुष्य बहुत कम होते हैं तो महानुभाव! आचार के बारे में कहा-

''आचारः कुल माख्याति, देश माख्याति भाषितं''

आचरण आपके कुल को कह देता है, आप किस कुल से हो यह कह देता है। सत्यभामा की शादी दासी पुत्र कपिल से हो गई, यद्यपि वह वेद पाठी था किंतु सत्यभामा ने जब उसकी चेष्टायें देखी तो वह समझ गयी ये व्यक्ति कुलीन नहीं हो सकता, वो राजा के पास गयी पुनः न्याय हुआ पता चला कि वास्तव में यह दासी पुत्र है।

एक कौआ उड़कर जा रहा था, कोयल ने पूछा-मामा! कहाँ जा रहे हो? तुनककर के बोला-बेटी यहाँ तो कोई मेरी आवाज को समझता ही नहीं-

''जो जाको गुण जासहिं, सो ते आदर देत।
कोयल अम्बुहि लेत है, काक निबोरी लेत॥''

जैसे कोयल आम को महत्त्व देती है वैसे ही कौवा नीम की निबोरी को, तो कौआ कहने लगा यहाँ मेरी आवाज को सुनने समझने वाला कोई नहीं है इसीलिए मैं वहाँ जा रहा हूँ जहाँ मेरा सम्मान होगा, मेरी आवाज को सुनने के लिए लोग तरसें, जैसे तेरी आवाज को तरसते हैं। कोयल कहने लगी-मामा-वहाँ भी तुम्हें लोग पत्थर ही मारेंगे। अरे! पत्थर कैसे मारेंगे, मैंने किसी से कुछ लिया है क्या? मामा-कुछ लिया तो नहीं है किन्तु बात यही है।

कौआ काको लेत है, कोयल-काको देय।
मीठी वाणी बोलकर जग अपनो कर लेय॥

तुम्हारी जो कर्कश वाणी है वह तुम्हें पत्थर खाने के लिए मजबूर करती है और मेरी मीठी वाणी सुनकर लोग मुझे मीठे फल खिलाना चाहते हैं, इसीलिए मेरा तुमसे यही कहना है कि स्थान को मत बदलो यदि बदलना ही है तो अपनी वाणी को बदलो।

महानुभाव! जो व्यक्ति अपने व्यवहार को बदलने में असमर्थ हैं, अपनी वाणी, अपने क्रिया कलापों को बदलने में असमर्थ हैं, वे केवल दूसरों की निंदा कर सकते हैं इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकते। जो अपने आप को सुधारने में समर्थ हैं, उन्हें कभी दूसरों की निंदा करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जो अपने आपको सुधारने में असमर्थ हैं उन्हें ही प्रायः दूसरों से शिकायत होती है, जो अपने आपको सम्भालने में, सुधारने में समर्थ हैं उन्हें कभी भी किसी से शिकायत नहीं होती है। शिकायत अपने आप में कमजोरी का प्रतीक है। जो व्यक्ति अपने आप में सम्पूर्ण है, पूर्ण है उसे शिकायत क्या? किन्तु जिसकी खुशी, जिसकी शांति, जिसका सुख, जिसका वैभव किसी दूसरे पर निर्भर होगा तब उसके हिलने-डुलने से उसमें भी अंतर तो आयेगा ही। जिस मकान की नींव मजबूत है, गहरी है उसे क्या फर्क पड़ता है, किन्तु

जिसका मकान किसी प्लाई पर बना है या कपड़े पर तनकर बना है, यदि नीचे से प्लाई या कपड़े से बना डंडा हिलता है तो पूरा मकान झूल जाता है, इसीलिए यदि तुम किसी के आधार पर हो तो उसके थोड़े से हिलने पर तुम डगमगा जाओगे, गिरने के आसार रहेंगे और यदि तुम स्वयं के आधार पर हो तो संसार का कोई भी प्राणी कोई भी शक्ति तुम्हें न तो किंचित् हिला सकते हैं और न डिगा सकते हैं तो महानुभाव! आचार के बारे में आचार्यों ने लिखा है-

''आचारः परमो धर्मः, आचारः परमो तपः।
आचारः परमं ज्ञानं, आचारः परमो सुखः॥''

आचार ही परम धर्म है, आचार से बड़ा कोई धर्म नहीं और जिसके जीवन में आचार नहीं उसके जीवन में कोई धर्म नहीं। आचरण अच्छा है और सच्चा है तो और दूसरे धर्म की आवश्यकता नहीं और आचरण में ही सच्चापन नहीं है तो संसार के और कितने ही धर्म ओढ़ लेना उनसे कोई कल्याण होने वाला नहीं है।

''आचारः परमो तपः'' संसार में यदि सबसे बड़ा कोई तप है तो आचरण है। आचरण की शुद्धि नहीं है तो कितने ही व्रत उपवास कर लो, कितना ही त्याग कर लो, कितना पंचाग्नि तप कर लो, यदि आचरण शुद्ध नहीं है तो चाहे सिर के बल खड़े हो जाओ, चाहे नदी में खड़े हो जाओ, चाहे कुछ भी करो, आचरण की शुद्धि के बिना आत्मा की शुद्धि सम्भव नहीं।

''आचारः परमं ज्ञानं'' आचार से बढ़कर संसार में कोई दूसरा बड़ा ज्ञान नहीं हो सकता। जिसका आचरण शुद्ध है उसको समझो किसी की आवश्यकता नहीं है। समझाने की आवश्यकता तो उन्हें पड़ती है जो आचरण विहीन हैं। जो केवल शब्दों का संग्रह करके अपने मस्तिष्क में रखकर घूमते-फिरते हैं, दूसरों को सिखाने बताने के लिए। **''आचारात् किम् न साधयेत्''** संसार में ऐसा कौन सा पदार्थ

है जो आचरण से सिद्ध न हो सके, आचरण से प्राप्त न हो सके। तुम उस वस्तु के काबिल बनो वह वस्तु तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी। व्यक्ति भगवान् से माँगता है, वही माँगता है जो उस वस्तु के काबिल नहीं है। यदि तुम काबिल बन जाओगे तो प्रकृति वह तुम्हें अवश्य नियम से देगी। विश्वास रखो, यदि तुम काबिल नहीं हो और वस्तु तुमने कैसे भी प्राप्त कर ली तो तुम उसे रख नहीं पाओगे, सदुपयोग नहीं कर पाओगे, पचा नहीं पाओगे, तो महानुभाव! स्वयं काबिल बनना है। आचार के बारे में और भी लिखा है-

''सदाचारो महत्धर्मः, मूल ज्ञान तपोनिधि।
पुण्याणि तस्य वैराग्यं, संयमो हि गुणाकरो॥

सदाचार महान् धर्म है और सदाचार ही मूल है, जड़ है त्याग और तपस्या की। आत्म ध्यान और तपस्या का यदि मूल कुछ है तो वह है सदाचार। सदाचार के वृक्ष पर ही वैराग्य के पुण्य होते हैं, वह सदाचार उसका फल है और सदाचार ही संयम और गुणों का आकर है। आकर अर्थात् खजाना है। सदाचार एक ऐसी चुम्बक है, जिसमें इतना गुरुत्वाकर्षण है कि उसमें समस्त गुण खिंचकर के चले आते हैं जैसे गंध के लोभी भ्रमर पुण्य के पास चले आते हैं, जैसे प्रकाश के तीव्र इच्छुक पतंगे दीपक के पास आ जाते हैं। महानुभाव! सदाचार की शक्ति भी ऐसी ही है। सदाचार के बारे में आगे और भी कहा है-

सदाचारो बन्धुः गुणगण निधि मातृ सम वा,
सदाचारो धर्मो विगत इव दोषोत्भुत गतिः।
सदाचारो लोके जनयति शशि सन्निभयसम्,
सदाचारो वन्दे भव विभव हान्ये सुमनसाम्॥

मैं उस सदाचार की वन्दना करता हूँ जो सदाचार संसार के प्राणियों के संसार को नाश करने में समर्थ है, अच्छे मन वाले व्यक्ति जिस सदाचार का आश्रय लेकर संसार से पार हो जाते हैं। सदाचार रूपी नौका संसार रूपी समुद्र से पार लगा देती है, सदाचार की रस्सी संसार

कूप में पड़े व्यक्ति के लिए आलम्बन है, सदाचार रूपी जहाज संसार समुद्र से पार लगाने वाला होता है। तो वह सदाचार कैसा है-'सदाचारो बन्धुः' संसार का कोई भी मित्र तुम्हें धोखा दे सकता है, तुमसे धन छीन सकता है किन्तु सदाचार तुम्हें कभी धोखा नहीं दे सकता, तुम्हें कभी ठगेगा नहीं, कैसा है वह- 'गुणगणनिधि मातु सम वा' गुणों के समूह की निधि, माँ के समान रक्षा करने वाला है वह सदाचार। जैसे माँ अपने छोटे बच्चे की सुरक्षा करती है ऐसे ही सदाचार भी उस मानव की रक्षा करता है जो मानव अपने जीवन में इस सदाचार को माँ की तरह सम्मान देता है।

सदाचारो धर्मः-सदाचार धर्म है, कैसा है- विगत इव दोषोत्भुतगतिः'' समस्त दोषों से रहित वह सदाचार ही धर्म है। सदाचार चन्द्रमा के समान संसार में शीतल यश और कांति फैलाने वाला है इसीलिए मैं सदाचार की वन्दना करता हूँ। वह सदाचार मेरे संसार का अंत करने में समर्थ हो।

महानुभाव! सदाचार के बारे में कोई कवि लिखता है-

अरब-खरब की सम्पदा, उदय अस्तलों राज।
सदाचार बिन जानिये, पत्थर भरे जहाज॥

सदाचार के बिना तुम्हारे पास कितना ही भौतिक धन हो वह तो जहाज में भरे पत्थर के समान बेकार है और सदाचार है तो व्यक्ति गरीब होते हुए भी अमीर है, उससे बढ़कर कोई धन नहीं है।

सदाचार गुण सिंधु है, सदाचार ही मोक्ष की ध्वजा है, सदाचार अनंत सुख का देने वाला है, सदाचार ही जिनत्व का कारण है। महानुभाव! सदाचार क्या है?

अपनी अच्छाईयों को प्रतिकूलता में भी नहीं छोड़ना।

महाराणा प्रताप अपने राज्य को छोड़कर जंगल में भी रहे, घास की रोटियाँ खाना तो पसन्द कर लिया किन्तु माँस की बोटियाँ खाना स्वीकार नहीं किया। सदाचार के मायने क्या है-

सत्यवादी राजा हरिशचन्द्र उन्होंने अपने सत्य को, सदाचार को नहीं छोड़ा चाहे मरघट पर जाकर रखवाली की, राम ने अपने पिता की आज्ञा पालन करने के लिए राज्य का परित्याग कर दिया, जंगल में वन-वन घूमे। पाण्डव जब जुआ हार गये तो वन-वन तो रहे किन्तु अन्याय, अत्याचार को स्वीकार नहीं किया।

अपने धर्म को, संकल्पों को, नियमों को नहीं तोड़ना ही सदाचार है। जीवन में प्रतिकूलतायें भी आती हैं किन्तु हमें अपने धर्म को छोड़ना नहीं है।

आपने मध्य प्रदेश में पन्ना जिले का नाम सुना होगा जहाँ हीरा निकलता है, वहाँ का राजा पहले अमानसिंह था, उसका बेटा था छत्रसाल जिसने कुण्डलपुर के बड़े बाबा की प्रतिमा का जीर्णोद्धार कराया। वह छत्रसाल जब छोटा सा था, पालने में झूल रहा था, तब अमानसिंह अपनी रानी से कुछ मजाक कर रहा था। उसकी रानी ने उससे कहा-देखो! पर पुरुष के सामने तुम मेरी बेइज्जती मत करो, अमानसिंह ने पूछा इन महलों में हमारे-तुम्हारे सिवाय अन्य परपुरुष कौन है, रानी ने कहा-मेरा बेटा जो अभी पालने में झूल रहा है और रानी ने जब इशारा किया तो बेटे ने आँख बंद कर ली और करवट ले ली। रानी ने कहा-देखो शर्म से वह पलट गया, वह मेरा बेटा है, संस्कार ऐसे हैं वह समझता है, जानता है, तुमने मजाक की मेरे बेटे के सामने समझो परपुरुष के सामने। वही छत्रसाल जब बड़ा हुआ तब बहुत कर्त्तव्यनिष्ठ था। लोग उससे ईर्ष्या करते क्योंकि वह बहुत सुन्दर था, स्त्रियाँ उससे ईर्ष्या करती थी और चाहती थी किन्तु कोई उसे डिगा नही पायी।

एक दिन एक वेश्या ने संकल्प किया कि मैं छत्रसाल को डिगाकर ही रहूँगी, तो छत्रसाल जिस रास्ते से जाता था वह वेश्या उस रास्ते पर जाकर बैठ गई, पेड़ की आड़ में छिपकर रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर छत्रसाल ने सोचा मेरे राज्य में कौन रो रहा है? वह घोड़े से उतरा और उस महिला के पास पहुँचा, उसका मुँह ढका

हुआ था, पहचान तो नहीं पाया, उसने पूछा-कौन हो आप? क्यों रोती हो, क्या बात है? उसने कहा-हमारा राजा हमारा दुःख सुनता ही नहीं है, उसे लगा यह तो मुझ पर तीर कस रही है। बोले-हाँ कहिए, आप राजा से क्या चाहती हो। क्या राजा आपके दुःख को मिटा सकता है? बोली-हाँ मिटा सकता है, सौ बार मिटा सकता है, किन्तु राजा मेरी फरियाद सुनता नहीं। वह बोला-हम तुम्हें वचन देते हैं यदि हम तुम्हारे दुःख को मिटाने में समर्थ हों तो अवश्य मिटायेंगे। वह मुस्कुराती हुई कहने लगी मुझे तुम्हारे जैसा बेटा चाहिए। छत्रसाल उसकी बात सुनकर स्तब्ध सा रह गया परन्तु वह भी तेज दिमाग का था तुरन्त उसके पैर पकड़ लिए और कहने लगा-हे माँ मुझे अपना दूध पिला दे। वेश्या का आशय तो गंदा था किंतु छत्रसाल ने कहा-माँ मैं ही तेरा बेटा हूँ तुझे मुझ जैसे बेटे की क्या आवश्यकता, वेश्या पानी-पानी हो गई।

महानुभाव! कहने का आशय ये है कि व्यक्ति अपने धर्म की रक्षा कैसे-कैसे करता है, किसके जीवन में प्रतिकूलता नहीं आती? सबके जीवन में आती है। चाहे कोई व्यक्ति छोटा हो या बड़ा परीक्षा सबके जीवन में आती है,

बेबस मजबूरी लाचारी, किसके साथ नहीं होती।
बोलो ऐसी धरा कहाँ है, जहाँ पर रात नहीं होती।

तो महानुभाव! जीवन में मजबूरियाँ भी आती हैं, लाचारी भी आती है। कभी व्यक्ति बेबस भी हो जाता है किन्तु सदाचारी व्यक्ति वह है कितनी भी प्रतिकूलतायें आयें-

''तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पाये।''

वही सदाचार कहलाता है। उस सदाचार को आप भी अपने जीवन में स्थान दें, वह सदाचार आपके जीवन को महान् बनाये, आपको भगवान् बनाये, आपको सिद्धि दिलाये। वह सदाचार संसार का सारभूत रत्न है और उसके हमने चार हिस्से कर दिये। कोई वस्तु

रखी हो उसको चारों दिशा से देखो, एक दिशा से देखते हैं तो दिखाई देता है सद्कार्य, दूसरी ओर से देखा सद्व्यवहार, तीसरी ओर से देखा सद्विचार और चौथी तरफ से देखा तो सद् आहार। यही सब मिलकर कहलाता है-सदाचार! सदाचार! सदाचार! आपके जीवन में भी हो यह सद्आचार तब नि:संदेह आप कर सकेंगे आत्म विहार। अधिक न कहते हुए आप सभी को सदाचार की प्रेरणा देता हुआ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''जैनम् जयतु शासनम्''

भरोसा ''खुदा'' पर है,
तो जो लिखा है तकदीर में,
वो ही पाओगे।
मगर,
भरोसा अगर ''खुद'' पर है,
तो खुदा वही लिखेगा,
जो आप चाहोगे।

अमावस्या की रात्रि में प्रज्ज्वलित दीप

महानुभाव! अनादिकाल से हम और आप शाश्वत निशा के तमाछिन्न वातावरण में ही रहे, ये एक ऐसी तमसा है, ऐसी निशा है, ऐसी रजनी है जिसमें सुधांशु का पता नहीं, सुधाकर का पता नहीं, शीतांशु का पता नहीं कहाँ है। हर एक महीने में 15 दिन कृष्ण पक्ष के होते हैं और 15 दिन शुक्ल पक्ष के होते हैं पर हमारी निशा तो ऐसी है जिसमें शुक्ल पक्ष का तो कहीं नामोनिशान ही नहीं है। ऐसा लग रहा है जीवन में जैसे शाश्वत कृष्ण पक्ष ही चल रहा हो। जैसे कोयले में सफेदी खोजना असम्भव होता है, वैसे ही लगता है हमारा जीवन भी कोयले की तरह से चला आ रहा है, सफ़ेदी आज तक खोज नहीं सके। सफ़ेदी कोयले में दबी होती है। आपने देखी, किसी ने देखी? क्या धोने पर मिल जाएगी? नहीं कोयले में सफ़ेदी होती है किन्तु जलाने पर ही प्राप्त होती है, बिना जलाए नहीं। यदि कोयले में सफ़ेदी नहीं होती तो जलाने पर कहाँ से आती? इसी तरह हमारी आत्मा में शुक्ल पक्ष तो है किन्तु शुक्ल पक्ष तभी सम्भव है जब कृष्ण पक्ष का अंधकार जला दिया जाए।

ये बाहर की अग्नि होती है जो कोयले को जलाती है। कोयला जल करके राख हो जाता है किन्तु धवल हो जाता है। ऐसे ही हमारा जीवन सांसारिक जीवन है, जब तक ये जलेगा नहीं तब तक धवलता नहीं आएगी। हम चाहते हैं कि संसार छोड़ना ना पड़े और मोक्ष पकड़ में आ जाए। हम चाहते हैं कि दोनों होंठ कसके बंद करके बैठ जाएँ और अट्टाहास का, हँसी का आनंद भी आ जाए। हम चाहते हैं हम यहाँ से ना हिलें और दौड़ने का आनन्द ले लें। हम चाहते हैं शरीर पर पानी की एक बूँद भी ना लगे और समुद्र में तैरने का आनन्द भी ले लें। हम चाहते हैं कि कमरे से बाहर ना निकलें, अपने स्थान से

खड़े ना हों और दरवाजा अपने आप खुल जाए। दरवाजा जब अंदर से तुमने बंद किया है तो कौन आकर के खोलेगा। बाहर से कहीं दरवाजा बंद होता तो अब तक कब का खुल गया होता। इतने तीर्थंकर हुए, इतनी अनंतानंत चौबीसी हो गयीं, कोई भी तीर्थंकर अपनी दिव्यध्वनि से, दिव्यवाणी से तुम्हारी अंतरात्मा के दरवाजे को खोल देता किन्तु मुश्किल तो ये पड़ी है कि दरवाजा तुमने अन्दर से बंद कर लिया है। कोई महात्मा बाहर आकर के दस्तक दे करके चला जाएगा, तुम्हारे कमरे में प्रवेश नहीं कर पाएगा। कोई मसीहा, कोई फरिश्ता, कोई देवदूत, कोई तीर्थंकर, कोई महापुरुष, कोई भी संत, ऋषि, महात्मा मुनि आएगा किन्तु बाहर से लौटकर चला जाएगा। तुम्हारे घर में प्रवेश नहीं कर सकता। (without permission no admission) permission देनी चाहिए और तुम अन्दर से कुंडी लगाके बैठे हो। कोई आएगा चाहे भिखारी आए, चाहे कोई संत-महात्मा आए, द्वार तक तो आ सकता है किन्तु तुम्हारे घर तक नहीं आ सकता। दर तक तो कोई भी आ सकता है, घर तक हर कोई नहीं आ सकता। घर में वही आता है जिसे बुलाया जाता है। दर पर बिना बुलाया भी आ जाता है।

महानुभाव! कई बार हम सोचते हैं अनादिकाल से ले करके आज तक इतना समय निकल गया। अरे! कभी तो हमारी नींद खुल जाती, कभी तो हमारा कल्याण हो जाता। ये बातें कहीं काल्पनिक तो नहीं हैं कि अनादिकाल से जीव निगोद में भटक रहा है, अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है, जन्मता है, मरता है, इसका मोक्ष नहीं हुआ, अनंत चौबीसी हो गईं, हमारा मोक्ष नहीं हुआ? नहीं, ये काल्पनिक नहीं है, ये शत प्रतिशत/सत्य है। कहीं भी इसमें शक का तो कोई स्थान है ही नहीं, कारण एक छोटे से उदाहरण से मैं बताता हूँ एक चींटी साइकिल के पहिये पर चक्कर लगा रही है, उसकी परिधि पर चक्कर लगा रही है। मैं आपसे पूछता हूँ वह केन्द्र पर कब तक पहुँचेगी। उसे कितना समय लगेगा? कभी नहीं पहुँचेगी, क्यों? क्योंकि उसकी दिशा

ही गलत है। यही तो हमने किया है, अनादिकाल से परिधि पर चक्कर लगा रहे हैं, बाहर ही बाहर घूमते रहे। अन्दर तक जाने का, केन्द्र तक जाने का प्रयास तो अब तक हमने किया ही नहीं और एक साथ दो काम हो नहीं सकते। परिधि पर भी घूमते रहें और अन्दर की ओर भी यात्रा हो जाए। दो में से एक ही हो सकता है। एक राही एक समय में एक रास्ता चल सकता है, दो नहीं, चाहे भले ही वे रास्ते समानान्तर ही क्यों न हों तब भी दो पर वो नहीं चल सकता और फिर तुम तो विपरीत रास्ते की बात कर रहे हो।

दो मुख सुईं सिले न कन्था,
दो मुख राही चले न पंथा।
दोइ कार्य न होए सयाने,
विषय भोग और मोक्ष हु जाने॥

कोई भी स्त्री सिलाई करती है तो एक तरफ से करती है दो तरफ से नहीं, कोई कितना भी अच्छा राहगीर हो, कितनी भी तेज गति से चलने वाला हो पर एक बार में तो एक ही दिशा में चल सकता है। हमने क्या किया? हम जिस राह पर चले रहे थे उस राह को छोड़ा नहीं, जिस राह पर जाना था उसे पकड़ा नहीं, क्योंकि हम पकड़ना चाहते थे तो छोड़ना नहीं चाहते थे, जब छोड़ना चाहते थे तब पकड़ने का भाव नहीं था। महानुभाव! इसीलिए इस घोर अंधकार में अनादि और अभव्य की अपेक्षा से अंतहीन रात्रि से पार न हो सके और भव्य की अपेक्षा से कहेंगे तो अनादि सान्त ऐसी ये तमसावृत निशा आज तक हमारे जीवन में है।

दूसरी बात एक और है निशा भी खतरनाक नहीं होती यदि अपने पास कुछ संकेत हो तो। कई बार अंधे व्यक्तियों को देखा है घर से दुकान, दुकान से घर आ जाते हैं कहीं टकराते नहीं। कई बार अंधे व्यक्तियों को देखा है, लाठी के सहारे-सहारे पूरी यात्रा कर लेते हैं। अंधा व्यक्ति कहो या अंधकार कहो उसके लिए तो दोनों बात एक

ही हैं। अंधकार किसे कहते हैं? **अंधंकरोति अंधकारः** जो आँखों वाले व्यक्ति को भी अंधा कर दे उसे अंधकार कहते हैं। **कुंभंकरोति कुंभकारः** जो घड़े को बनाने वाला होता है उसे कुंभकार कहते हैं। ऐसे ही जो अंधा करने वाला होता है वह अंधकार होता है जो आँखों वाले व्यक्ति को भी अंधा कर दे। तो वह अंधा व्यक्ति जिसकी अभी हम चर्चा कर रहे थे उसे कुछ आभास है कि पहले ऐसे जाना है फिर मुड़ना है, हाथ में कुछ भी नहीं तो कम से कम लाठी तो है। लाठी से देख लेता है कहीं पेड़ तो नहीं है, दीवार तो नहीं है फिर आगे बढ़ जाता है। किन्तु हम तो अनादिकाल से ऐसे व्यक्ति रहे जिसके हाथ में लाठी भी नहीं है, मुश्किल तो ये है कहाँ चलें? यह तो नेत्रों की ज्योति न होने से अंधा है परन्तु नीतिकारों ने आचार्यों ने बताया कि अंधा कौन है?

अन्धास्त एवं लोकेस्मिन्, विश्वतत्त्वप्रकाशकम् ।
ज्ञान नेत्रं न यैः प्राप्तं, गुरोरन्ते शिवप्रदम् ॥

''जिन्होंने गुरु के समीप समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने वाला, कल्याणदायक ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त नहीं किया है, वे ही मनुष्य अंधे हैं'' उस अंधे पुरुष के हाथ में लाठी तो थी। अंधा व्यक्ति लाठी के सहारे आगे बढ़ सकता है। अंधकार में व्यक्ति लाठी से जा सकता है, कुछ तो धीरे-धीरे बढ़ेगा, टकरायेगा नहीं किन्तु अंधकार घनघोर है लाठी भी नहीं है, फिर क्या करना चाहिए? दीपक ले लें, दीपक होता फिर तो अंधकार ही नहीं होता, जहाँ प्रज्ज्वलित दीपक है वहाँ तो अंधकार ही नहीं है। चेतना के अंधकार को दूर करने वाला प्रज्ज्वलित दीप है-तत्त्वज्ञान।

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं।
सूना है वह देश जहाँ सद् साहित्य नहीं॥

वह आत्मा का प्रदेश सूना पड़ा हुआ है जहाँ सम्यक् शास्त्रों का अभाव है, सद्ज्ञान का, तत्त्वज्ञान का अभाव है-

तदस्य कर्तुं जगदङ्घ्रिलीनं, तिरोहितास्ते सहजैव शक्तिः।
प्रबोधितस्तां समभिव्यनक्ति, प्रसह्य विज्ञानमयःप्रदीपः॥

इस जगत् को अपने चरणों में लीन करने के लिए जो सहज स्वाभाविक आत्म शक्ति है वह तिरोहित हो रही है, अच्छी तरह प्रज्ज्वलित हुआ ज्ञान रूप दीपक सहज शक्ति को प्रकट कर देता है। आत्मा के अंधकार को दूर करने के लिए सूर्य, चन्द्रमा की आवश्यकता नहीं, उस अंधकार को करोड़ों सूर्य चन्द्रमा मिल करके नष्ट नहीं कर सकते, जो अंधकार हमारी आत्मा के प्रदेशों में छिप करके बैठा है। उस अंधकार को तो गुरु के ही वचन दूर कर सकते हैं, जिनवाणी के वचन दूर कर सकते हैं। आचार्य महाराज कहते हैं-

आलोकेन बिना लोको, मार्ग नालोकते यथा।
बिनागमेन धर्मार्थी, धर्माध्वानं जनस्तथा।

''जिस प्रकार प्रकाश के बिना लोक, मार्ग को नहीं देखता है उसी प्रकार धर्म का इच्छुक मनुष्य आगमज्ञान के बिना धर्म मार्ग को नहीं जानता।'' महानुभाव! अंधा व्यक्ति यदि दीपक ले करके चले तो संभावना है वह सही राह पर पहुँच जायेगा। आप कहेंगे महाराज जी! कैसी बात कर रहे हैं, अंधा व्यक्ति दीपक, टॉर्च, लालटेन कुछ भी लेकर चले क्या फर्क पड़ता है। हाँ! ठीक कहते हो फिर भी यदि अंधा व्यक्ति टॉर्च ले करके चलेगा तो खतरा कुछ कम है। मतलब? एक बार क्या हुआ एक अंधा व्यक्ति जंगल में एक झोंपड़ी में रहता था। उसे पानी लेने के लिए बहुत दूर जाना पड़ता था, नदी किनारे रात्रि में जाता था, एक हाथ में लाठी एक हाथ में मटका। एक बार मार्ग में जाते समय किसी व्यक्ति से टकरा गया, अंधे व्यक्ति ने हाथ जोड़े भईया क्षमा करना में अंधा हूँ। अंधे ने कहा नहीं, पर कहना चाहता था कि मैं तो अंधा था क्या तू भी अंधा था, किन्तु वह चुप रहा माफी माँग ली। उस आँख वाले व्यक्ति ने कहा-अंधा है तो क्या हुआ हाथ में टॉर्च लेकर तो आता। अंधे ने कहा-यदि मैं हाथों में टॉर्च लेकर

भी आ जाता तो क्या होता? सामने वाले ने कहा-यदि टॉर्च तेरे हाथ में होती तो मैं देख लेता कि सामने से कोई आ रहा है। अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जिससे कोई तुझसे आकर न टकरा पाये। अंधे की समझ में बात तो आयी कि यदि मैं टॉर्च लेकर चलूँगा तो कोई मुझसे न टकरायेगा।

महानुभाव! किन्तु अंधेरा तो अपने आप में अंधेरा ही है, अंधेरे में व्यक्ति निःसंदेह रास्ता भटक सकता है, अंधेरे में मंजिल किसी ने भी प्राप्त नहीं की और कई बार तो ऐसा होता है मंजिल अपने पीठ के पीछे भी हो, तो भी अंधेरे में चक्कर काटते रहेंगे, मंजिल तक न पहुँच पायेंगे। प्रकाश हो तो सुदूरवर्ती वस्तु को भी सहजता में प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार आत्मा में यदि सम्यक् ज्ञान का प्रकाश है तो मोक्ष रूपी मंजिल को भी प्राप्त किया जा सकता है। आचार्यों ने अज्ञानी व्यक्ति को भी अंधा कहा है।

अनेक संशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यंध एव सः॥

''अनेक संशयों को नष्ट करने वाला परोक्ष अर्थ को देखने वाला तथा सबके नेत्र स्वरूप, शास्त्र जिसके नहीं है, वह अंधा ही है। महानुभाव! यह अनादिकालीन अंधेरा, कैसा अंधेरा अमावस्या का अंधेरा। अंधेरा तो अन्य रात्रि में भी होता है किन्तु कहा जाता है कि अमावस्या की रात्रि कुछ ज्यादा गहरी होती है और जब आकाश में गहन बादल छाये हों तब तो उस अंधेरे का कहना ही क्या? किन्तु अंधेरा कितना ही पुराना हो, कितना भी घना हो, कितना ही बड़ा हो चाहे छोटा हो, उस अंधेरे को दूर करने के लिए एक साधन था, है, रहेगा, वह है छोटा सा दीपक। एक छोटा सा दीपक भी अंधकार से लड़ने का साहस रखता है। जिसके जीवन में छोटा सा दीपक हो वह अंधेरे में भी अपनी पूरी यात्रा कर सकता है। आप कहेंगे ऐसा कैसे कर सकता है।

एक बार दो मित्र शिखरजी यात्रा करने के लिए गये, उस समय शिखर जी की यात्रा करना बड़ा कठिन माना जाता था, ऊबड़-खाबड़ रास्ता था तो लोग-बाग 12 बजे यात्रा करने के लिए निकल जाते थे और दिन में धूप हो उससे पहले यात्रा करके लौटकर भी आ जाते थे। एक मित्र अपनी टॉर्च लेकर यात्रा करने के लिए चल दिया, दूसरा मित्र डर गया मैं कैसे जाऊँ और पहाड़ के समीप बैठकर रोने लगा। हाय रे! मैं इतनी दूर से चलकर आया, यहाँ पर क्या करूँ? वह प्रकाश होने का इंतजार करने लगा, इंतजारी की धूप आ गई, थोड़ा चला पसीना आ गया। अब यात्रा नहीं हो सकती सोचकर लौट आया। एक दिन हुआ, दो दिन हुए, तीन दिन हुए, एक किसान प्रतिदिन उस व्यक्ति को देखता था कि यह व्यक्ति प्रतिदिन आता है, चलता है, लौट आता है, थका हारा है, हताश है, उदास है, निराश है इसके मन की क्या बात है पूछके तो देखते हैं? पूछा क्या बात है? बोला-मैं शिखर जी की यात्रा बड़ी भावना से करने आया था, इतने बड़े अंधकार को देखकर घबरा जाता हूँ। प्रकाश मेरे पास है नहीं, छोटा सा टॉर्च का पाँच फीट तक का प्रकाश है। दिन में सोचता हूँ यात्रा करने की तो गर्मी बहुत हो जाती है, उस किसान ने कहा कि तेरे पास प्रकाश है? हाँ, कितना बड़ा? 5 फीट का, इस 5 फीट के प्रकाश में 27 किमी. की यात्रा कैसे की जाये? किसान ने कहा यात्रा तो हो सकती है किन्तु करना चाहते तो। अरे भईया इसीलिए ही तो आया हूँ, करना चाहता हूँ, ठीक है तो चलो, देखो जीवन में सम्पूर्ण सफलता, सम्पूर्ण उपलब्धियाँ एक साथ नहीं मिलती, हर मंजिल एक से चालू होती है।

Journey of hundred miles start with one step.

पहली सीढ़ी पर पैर रखो तो अंतिम सीढ़ी पर भी पैर रखोगे। तुम्हारे पास 5 फीट का प्रकाश है तो पहले 5 फीट चलो, अब 5 फीट ही और चलो, तो इस प्रकार वह आगे बढ़ता गया, प्रकाश भी आगे बढ़ता गया और क्रम-क्रम से पूरी शिखर जी की यात्रा करके

नीचे आ गया। एक दीया पर्याप्त है तुम्हारी पूरी जीवन यात्रा कराने के लिए, एक सूर्य का प्रकाश भी अपर्याप्त है उन आलसी व्यक्तियों के लिए जो यात्रा करने का बहाना तो करते हैं किन्तु यात्रा नहीं करते। हमारा जीवन कितना ही अंधकारमय है, चाहे अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान हमारे पास नहीं है, कोई बात नहीं किन्तु धीमे-धीमे बढ़ते-बढ़ते हम भी सर्वज्ञ बन सकते हैं। पूरा ज्ञान, केवलज्ञान भी हमें प्राप्त हो सकता है किन्तु तब, जब हम आगे बढ़ते जायेंगे। एक-एक पग चलने वाली चींटी सैकड़ों योजन की दूरी पार कर लेती है, न उड़ने वाला पक्षी एक कदम भी नहीं चल पाता।

महानुभाव! प्रकाश हम क्यों चाहते हैं, हर अंधकार का अंत प्रकाश है और हर प्रकाश का अंत अंधकार है। हर जीवन का अंत मृत्यु है हर मृत्यु का अंत पुनर्जीवन है, किन्तु मृत्यु की मृत्यु, जीवन की मृत्यु दोनों एक साथ होते हैं वह निर्वाण है, महाप्रयाण है। महानुभाव! दीपक प्रकाश का प्रतीक है और ज्ञान भी प्रकाश का प्रतीक है, इसे तीसरे नेत्र की उपमा दी गई है-

ज्ञानं तृतीयं पुरुषस्य नेत्रं, समस्त तत्त्वार्थ विलोकदक्षम्।
तेजोनपेक्षं विगतान्तरायं, प्रवृत्तिमत् सर्व जगत्त्रयेपि॥

''पुरुष का तीसरा नेत्र ज्ञान है जो समस्त तत्त्वार्थों को देखने में समर्थ है, प्रकाश आदि अन्य पदार्थों की अपेक्षा से रहित अन्तराय विघ्न बाधाओं से रहित है और तीनों लोकों में भी प्रवृत्त है।'' सम्यक् ज्ञान के नन्दा दीप से चेतना को प्रकाशित करना है। ज्ञान हमारी आत्मा का स्वभाव है। यद्यपि लोगों को प्रकाश पसन्द है। जो लोग भले आदमी हैं भला आदमी सोएगा भी तो रात में लाइट जलाकर सोएगा, अंधकार में सो ही नहीं सकता। दूसरी बात यह है जब तक प्रकाश रहता है तब तक कुकृत्य खोटे कार्य नहीं किये जा सकते, प्रायःकर वे अंधकार में किए जाते हैं। जो पापी व्यक्ति होते हैं उन्हें अंधकार पसन्द होता है, आवरण पसन्द होता है। पुण्यात्मा व्यक्ति जो होता है वह प्रकाश चाहता

है, एकान्त स्थान चाहता है, पापी व्यक्ति जब एकान्त में बैठा होता है तो उसे अपने पाप दिखाई देने लगते हैं इसीलिए टी.वी. खोल लेता है, न्यूज पेपर पढ़ने लगता है, कुछ और करने लगता है। पापी घर में भी एकांत में न बैठ पायेगा और पुण्यात्मा व्यक्ति एकांत में घंटों-घंटों निकाल देगा, उसको उसी में आनंद आता है।

तो अंधकार उसे पसन्द है जो दीर्घ संसारी जीव होते हैं। अंधकार में रहते हैं नारकी जीव, नरकों में प्रकाश है क्या? नहीं, और प्रकाश में रहते हैं स्वर्ग के देव, विमान में रहने वाले। वहाँ अंधकार नहीं है। प्रकाश में जघन्यतम अपराध नहीं किये जा सकते हैं। अंधेरा पाप कार्य की प्रेरणा देने वाला होता है और प्रकाश अच्छे कार्य की प्रेरणा देता है। करके देखना, यदि आपके बैडरूम में अच्छा प्रकाश हो सामने अच्छी-अच्छी पुस्तकें रखी हों तो आपका मन करता है इन्हें पढ़ लें और अंधेरा हो जाता है तो पाप की बात याद आती है, जीवन साथी की याद आती है, मन पाप के लिए भटकता है इसीलिए अंधकार संसार है और प्रकाश मोक्ष। क्या करना चाहिए यदि कोई सूर्य न उगा सके? इतना बड़ा अंतरिक्ष नहीं है कि सूर्य उगा सकें, हमारी सामर्थ्य नहीं है कि चेतना के क्षितिज पर एक सूर्य केवलज्ञान का प्रकट कर लें, तो क्या करें? एक छोटा दीया जला लें।

दीया धर्म ध्यान को वारो, नित-नित करे उजारो।

एक धर्मध्यान का दीपक अपने चित्त में जला लो सम्यक्दर्शन का दीपक, सम्यक् ज्ञान का दीपक, सम्यक् चारित्र का दीपक चेतना के क्षितिज पर जैसे ही उदीयमान होता है तब नि:संदेह आत्मा का एक-एक प्रदेश प्रकाशित हो जाता है किन्तु उसके पहले एक दीया की आवश्यकता है? और दीया ऐसे जला न सकोगे चाहे अनंतकाल बीत जाये, अंधेरे में कहाँ से लाओगे? अंधेरे में जब पहाड़ भी दिखाई नहीं दे रहा है तो और क्या दिखाई देगा। तो फिर? दीया जलाने की प्रेरणा भी दीये से मिलती है, बिना दीये के दीये की प्रेरणा नहीं मिलती। ध्यान

रखना, एक जला हुआ दीया हजारों बुझे हुए दीयों को जला सकता है किन्तु हजारों बुझे दीये एक दीये को जला नहीं सकते।

प्रकाश निर्भीक होता है, सत्य निर्भीक होता है, धर्म निर्भीक होता है, ज्ञान निर्भीक होता है। तीनों लोक मिलकर भी उस सत्य ज्ञान को छीन नहीं सकते। अंधकार को नष्ट करने के लिए एक किरण पर्याप्त है प्रकाश की, एक किरण पर्याप्त है सत्य की, एक किरण पर्याप्त है संयम की। एक आस्था की डोर पर्याप्त है, कोई कितने गहरे कुएँ में पड़ा हो आस्था की डोरी से चढ़कर ऊपर आ सकता है। कितना भी बड़ा समुद्र हो छोटी सी नाव से पार हो सकता है। सबके चित्त में धर्मध्यान का दीया होना चाहिए, किन्तु अभी आपने कहा दीये से दीया जलाया जाता है। जो अनादि मिथ्यादृष्टि हैं उनके पास धर्मध्यान कहाँ से आया, वह दीया कैसे जलायें? हमारे जिनशासन में पाँच दीये हैं। अब ये बात अलग है हमने कितने लिए हैं, लिए कि नहीं लिए हैं। वे 5 दीपक हमें मिले हैं–अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। ये ऐसे नंदादीप हैं, शाश्वत दीप हैं कि जो किसी प्रकार की हवा से, वर्षा से, तूफान से बुझते नहीं हैं, अन्यथा अन्य दीपक तो हाथ लगाते–लगाते भी हल्की सी हवा से बुझ जाते हैं। किन्तु ये ऐसे निर्भीक दीपक हैं पहाड़ की चोटी पर जब मूसलाधार वर्षा भी हो रही हो साथ ही तूफान भी हो तब भी दीया जल रहा है।

आँधी और तूफानों में जो, जलता हुआ मिल जाएगा।
उस दीप से तुम पूछ लेना, साधु का पता मिल जाएगा॥

साधु की पहचान बस इतनी ही है आँधी और तूफानों में जिसकी चेतना न बुझे, जिसकी आत्मज्योति मंद न पड़े, वास्तव में वही तो साधु है, वही तो परमेष्ठी है। महानुभाव! यदि ऐसा दीया एक बार कहीं मिल गया उस दीये के पास जाकर एक बार तो सिर झुकाओ, प्रणाम तो करो। बाल्टी कलश के नीचे जाकर नमस्कार करती है कलश उसे भर देता है। ऐसे ही अपने माथे को उस परमेष्ठी रूपी दीये की बाती से थोड़ा रगड़ो तो निःसंदेह तुम्हारा दीपक भी प्रज्ज्वलित हो जाएगा। ज्ञान

का प्रकाश जिन चरणों से आता है वहाँ जाकर अपनी बाल्टी लगा लो। नि:संदेह उनकी पदरज क्या मिली ये समझिये सब कुछ आपको मिल गया, मोक्ष की जड़ मिल गई, क्योंकि संसार में सब कुछ है किन्तु अंधेरे में रहने वाले को कुछ नहीं मिलता है। जिसके हाथ में दीया है उसके हाथ में सब कुछ है। दीया हाथ में होता है तो घर में रखी वस्तु भी मौके पर मिल जाती है, दीया हाथ में होता है तो कमाया जा सकता है, लाया जा सकता है, बनाया जा सकता, यदि दीया नहीं है तो पीठ के पीछे रखी वस्तु भी आप खोज न पायेंगे।

''घर में धरा न पाइये, जो कर दीया न होए''

यदि हाथ में दीपक नहीं हो तो घर में रखी वस्तु भी नहीं मिलती है। अमावस्या की रात्रि, अमावस्या मासांत। अमावस्या-कितना प्यारा शब्द है, ये मासांत तिथि, बही खाता लिखने वाले अमावस्या 30 लिखते हैं, पूर्णमासी को 15, ये संकेत कर रही है कि अब तो जीवन का प्रारम्भ करो, अमावस्या मासांत तिथि है। अमावस्या में अंधेरा होता है, अंधेरा तो एकम्, दौज, तीज में भी होता है, केवल सिर्फ और सिर्फ पूर्णमासी को छोड़ सब जगह अंधेरा है। 29 तिथि अंधेरे से युक्त होती हैं, चाहे कम हो या ज्यादा हर तिथि में अंधेरा है। शुक्ल पक्ष में अंधेरा घटता हुआ है और कृष्ण पक्ष में उजाला घटता जा रहा है। अमावस्या के बाद माह का प्रारम्भ होता है दक्षिण भारत में। उत्तर भारत में पूर्णमासी के बाद माह का प्रारम्भ मानते हैं।

महानुभाव! उस अमावस्या के अंधकार में एक दीपक जलाना चाहिए क्योंकि इससे बुरा, बड़ा, खतरनाक अंधेरा जीवन में कोई और हो नहीं सकता, उस अंधेरे में यदि दीया आपको मिल गया तो समझो आपको रास्ता मिल गया, वहाँ कैसे जाना है आप स्वयं ही तय कर लेंगे। एक बालक को आप पढ़ने की केवल शिक्षा दे दीजिए, वह स्वयं देख लेगा कि पुस्तक में क्या है, एक-एक चीज समझाने की आवश्यकता नहीं है उसे तो बस पढ़ने की कला सिखानी है। ऐसे ही आपको हम संसार की एक-एक बात से परिचय नहीं करायेंगे, केवल

हम तो चाहते हैं कि आपके अंदर एक ज्ञान का दीया जल जाए और फिर नहीं कहना पड़ेगा आत्मा अलग है शरीर अलग है, नहीं कहना पड़ेगा यह त्याग करो वह त्याग करो। केवल एक भेद विज्ञान का दीया जल जाए आप स्वयं समझ जायेंगे, स्वपर का भेद आ जाएगा। यदि संसार की अनंत वस्तुओं को कहेंगे कि ये तुम नहीं थे, ये तुम नहीं हो तो अनंत काल भी बीत जायेगा पूरा समझ न पायेंगे। तो महानुभाव!

ये पाँच दीपक हैं पंचपरमेष्ठी के वाचक, अपना दीया जलाओ खुद भी कोई एक परमेष्ठी हो जाओ। जैसे ही तुम्हारा दीया जलेगा तुम भी परमेष्ठी बन जाओगे और यदि परमेष्ठी नहीं बने तो दीये के समीप में पहुँच जाओगे तो सच्चे श्रावक कहलाओगे, दीये के समीप में पहुँचकर के वह बुझा हुआ दीपक भी तो दिखाई देता है। जो श्रावक परमेष्ठी के समीप में है भले ही अपना दीया नहीं जलाया, वह सच्चा श्रावक है जलाने की कगार पर है, स्पर्श कर रहा है जलने वाला है। जल गया तो परमेष्ठी बन गया और नहीं जला तो कम से कम श्रावक की श्रेणी में तो है। किन्तु जो जलते हुए दीये को पीठ देकर बैठ जाए उसको कौन समझाये, जो जलते हुए दीये के पास ही ना जाना चाहे उसे पकड़कर कौन लाये।

तो पंचपरमेष्ठी शाश्वत प्रज्ज्वलित दीपक हैं इनके समीप पहुँच जाओ। अरिहंत भगवान् का प्रतिबिम्ब भी अरिहंत के समान है, समवशरण में जाकर के अरिहंत भगवान् की पूजा करने से जो पुण्य आपको प्राप्त हो सकता है, जितने पाप का संवर हो सकता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा हो सकती है उतना ही शुभ आश्रव, पाप का संवर, पाप की निर्जरा मंदिर में भगवान् की पूजा करने से हो जायेगी। चौथे काल के मुनियों की पूजा करने से जो फल मिलता है पंचम काल के मुनियों की पूजा करने से भी वही फल मिल जाएगा। पवित्र भावना के साथ कोई श्रावक सामान्य मुनि को आहार दान देकर उतना पुण्य प्राप्त कर सकता है जितना उस समय तीर्थंकर को आहार दान देने से प्राप्त होता था किन्तु प्राप्त करने के लिए हमारा हृदय वैसा ही होना चाहिए जैसा उनका होता है।

महानुभाव! मात्र आपसे इतना ही कहना है कि अपने दीपक को प्रज्जवलित करो, अंधेरे में कब तक बैठे रहोगे और किसकी इंतजारी कर रहे हो? क्या कोई और आकर तुम्हारा दीया जलाएगा? नहीं, संभव ही नहीं है, जलाना तो तुम्हें ही है चाहे आज जलाओ, चाहे अभी, चाहे कल। जब भी जलाओगे तुम्हें ही जलाना पड़ेगा, अपने घर का दरवाजा तुम्हें ही खोलना पड़ेगा। एक कंजूस सेठ कमरे में नोट गिन रहा था, बड़ी सी अलमारी में बैठ गया, संयोग की बात अलमारी का दरवाजा बंद हो गया और उसकी चाबी नहीं, अंदर से खुलता नहीं। अब उसे कौन खोल सकता है कोई नहीं, ऐसे ही अभव्य को तो कोई मोक्ष में पहुँचा नहीं सकता किन्तु जिसके पास जीवन की चाबी है, भले ही बंद हो गया वह खोल सकता है, कमरे के बाहर निकल सकता है उसे राह दिखाने आपके द्वार पर कोई दस्तक देने आ सकता है कोई भी संत, महात्मा, परमेष्ठी आयें। इस काल में अरिहंत तो आते नहीं हैं, सिद्ध तो किसी भी काल में आते ही नहीं हैं वे तो जाते ही जाते हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु आते हैं तुम्हारे पुण्य का उदय है।

दीपक के थोड़े निकट रहने वाले क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका की संगति प्राप्त हो रही है, दीपक से थोड़ा दूर धुंधले प्रकाश में ऐसे व्रती प्रतिमाधारी श्रावकों की आपको संगति प्राप्त हो रही है। किन्तु ये सब प्रेरणा है कि आप अपने दीपक के पास आ सको, हम तो केवल इतना पता देने आये थे कि आप भी किसी जलते हुए दीपक के पास पहुँचें और अपने बुझे हुए दीपक को जलाने का सम्यक् पुरुषार्थ करें, इसी में आपकी आत्मा का हित है यही कल्याण का मार्ग है, शाश्वत श्रेय मार्ग है। आप उसे प्राप्त करें, उसके फल को प्राप्त करें ऐसी मैं आपके प्रति मंगल भावना भाता हूँ। इसी मंगल भावना के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''जैनं जयतु शासनम्''

कौन धनी त्रिशला के महल का

महानुभाव! संसार का प्रत्येक प्राणी धन और वैभव चाहता है, वह निर्धन रहना नहीं चाहता। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने तो यहाँ तक कह दिया है कि एकेन्द्रिय जीव के अन्दर भी परिग्रह की संज्ञा है। यदि कहीं धन है तो वृक्ष की जड़ वहीं तक चली जाती हैं और उस खजाने को वह अपनी जड़ों के बीच में लपेट लेता है। इससे सिद्ध होता है कि एकेन्द्रिय जीव तक धन चाहता है तो आप तो संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य हैं। क्या आप धन नहीं चाहते, संसार का एक भी ऐसा जीव नहीं है जो धन नहीं चाहता। जो नहीं चाहता तो कुछ भी नहीं चाहता यदि चाहता है तो धन चाहता है, सुख चाहता है, शांति चाहता है, ज्ञान चाहता है, अनुकूलता चाहता है, उच्चता चाहता है। जब तक जीवन में कोई भी एक इच्छा, वांछा, अभिलाषा शेष रहेगी तो उसमें धन की इच्छा अवश्य रहेगी। आप सोच रहे होंगे क्या मुनि महाराज भी धन चाहते होंगे? क्या वे साधु संत, फकीर कुछ नहीं चाहते? क्या वे महात्मा भी कुछ चाहते हैं?

संत महात्मा दोनों प्रकार के हैं जो आत्मा में लीन हैं, निश्चय में लीन हैं, शुद्धोपयोग को प्राप्त हो चुके हैं निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं उस समय उनकी समस्त चाहनायें नष्ट हो जाती हैं। झुकता वह व्यक्ति है जिसे कुछ चाहिए, जिसे कुछ नहीं चाहिए अपने आप में लीन है, अपने आप में पूर्ण है, अपने आप में स्वतंत्र है, अपने आप में संतुष्ट है उसे किसी से माँगने की, चाहने की आवश्यकता ही नहीं है। महाराज जी जो साधु आत्मा में लीन नहीं हैं व्यवहार धर्म का पालन कर रहे हैं तो क्या धन चाहते हैं? हाँ वे धन चाहते हैं, महाराज जी! यदि वे धन चाहते होते तो धन का त्याग करके साधु क्यों बन गये? हाँ ये बात तो सही है, किन्तु फिर भी धन चाहते हैं, कौन सा? जो शाश्वत धन है। अविनश्वर धन की चाह साधु को होती है। बिना

चाहे तो साधु बन ही नहीं सकता। चाह जब तीव्र हो जाती है जो कुछ उसे मिला है उससे वह संतुष्ट नहीं है, क्योंकि उसके पास जो कुछ भी है क्षणभंगुर है, विनश्वर है, नष्ट हो जाने वाला है इसीलिए साधु वह बनता है जिसकी कामना वांछा अविनश्वर धन-सम्पत्ति को प्राप्त करने की होती है।

और ध्यान रखना हम कहते हैं व्यवहार की भाषा में उन्होंने ये छोड़ दिया, माता-बहिनें भजन में गाया करती हैं-सब कुछ छोड़ करके यथाजात नग्न हो गये, शरीर पर एक धागा लंगोटी भी नहीं रखी, सब कुछ त्याग कर दिया। एक मयूर पिच्छिका रखी जीवों की रक्षा करने के लिए, कमण्डलु रखा शुद्धि के लिए या कोई शास्त्र रखा स्वाध्याय करने के लिए, जिससे अच्छी-अच्छी बातें पढ़कर के अपना मन लगाये रहें और भव्य प्राणियों को, सुधीजनों को धर्म की चार बातें बता सकें। सब कुछ छोड़ दिया। आपको बड़ा आश्चर्य होता है यह सुनकर की भरत चक्रवर्ती ने एक सैकेण्ड भी नहीं लगाई छः खण्ड का राज्य छोड़ने में, 96 हजार रानियों का त्याग करने में, नवनिधि चौदह रत्नों को कैसे छोड़ दिया होगा? आपसे कोई कहे, कि तुम्हारे पास जो सूटकेस है उसे छोड़ दो, अरे! क्यों छोड़ दूँ तुम्हारे पिताजी का है जो छोड़ दूँ, वह नहीं छोड़ सकता। तुम्हारे हाथ में यदि सोने की अंगूठी है कोई मांगे तो दे दोगे क्या, नहीं दोगे, किंतु हम कहते हैं दे दोगे, चाहे लोहे का छल्ला हो, चाहे ताँबे का छल्ला हो, चाहे हीरे-मोती, सोने-चाँदी की अंगूठी हो तुम उसे दे दोगे किन्तु कब, कैसे और क्यों?

यदि तुम्हारे हाथ में लोहे की अंगूठी है और उसके बदले तुम्हें कोई ताँबे की अंगूठी देना चाहेगा तो तुम कहोगे ठीक है लोहे से तो बहुत अच्छा है लाओ, यदि तुम्हारे हाथ में ताँबे की अंगूठी है और कहा जाए इसके बदले चाँदी की ले लो तो तुम जल्दी से ले लोगे, कहीं कहकर लौट न जाये और यदि तुम्हारे हाथ में चाँदी की अंगूठी हो और कोई बदले में सोने की अंगूठी दे तो तुम कहोगे पहले सोना

चैक तो करो और सही निकला तो तुम कहोगे भईया! जल्दी से बदल ले मैं चाँदी की बहुत सारी अंगूठी लाता हूँ तू सोने की ले आ, यदि तू डायमण्ड की ले आयेगा तो मैं तुझे सोने की दे दूँगा। अरे! अभी तो तुम कह रहे थे कि दे नहीं सकते और अब तुम देने को तैयार हो गये। सामने वाले व्यक्ति ने एक बार कह दिया तू चाँदी की दे दे, सोने की ले ले तो तुम बड़ी जल्दी तैयार हो गये।

महानुभाव! एक कृपण से कृपण व्यक्ति जो अपनी कोई चीज देने को तैयार नहीं आज इतना देने को तैयार है, किन्तु शर्त ये है कि बदले में उसे उससे अच्छी चीज मिलना चाहिए, ऐसे ही भरत चक्रवर्ती ने छः खण्ड, नवनिधि, चौदह रत्न, 96 हजार देवांगनाओं के समान सुन्दर रानियों को छोड़ दिया क्यों? क्योंकि उन्हें छोडे बिना वह सिद्ध पद नहीं मिल सकता। सब कुछ पाने के लिए सब कुछ छोड़ना पड़ता है। जो कुछ छोड़ने के लिए जी कतराते हैं वह सब कुछ जीवन में पा नहीं सकते। महानुभाव! आप सुन रहे थे कि साधु भी धन चाहता है, हम देख लें कि धन किसे कहते हैं? आप लोग उसे धन कहते हैं जो धर्म को नष्ट करके आये, धन का अर्थ है ध-धर्म, न-नष्ट अर्थात् जो धर्म को नष्ट करके आये भौतिक सम्पत्ति, नोटों के बंडल, सोने-चाँदी के ढेर, हीरे-मोती, पाषाण के खण्ड इसे आप कहते हैं धन। नीतिकार कहते हैं-

गोधन, गजधन, बाजधन और रत्न धन खान।
जब आवे संतोष धन सब धन धूल समान॥

नीतिकार की दृष्टि में गाय, भैंस आदि पशु धन कहलाता है, अनाज आदि धन कहलाता है, राज्य, रत्नों का ढेर सब धन ही है। साधु इस धन को नहीं चाहते, जो धन नष्ट हो जाये उसे साधु नहीं चाहता क्योंकि साधु स्थायी धन को प्राप्त करना चाहता है। श्रावक का स्थायी धन से परिचय नहीं है इसीलिए वह उन अस्थायी धन पर रीझ जाता है। एक अंधा व्यक्ति अपना कटोरा लेकर भीख माँगता फिरता

है उसके कटोरे में कोई नोट डाल दे तो वह उठाकर के फैंक देता है किन्तु कोई पैसे डाल दे तो वह उसे रख लेता है उससे पूछा-भाई तुम नोट क्यों अलग कर देते हो, बोला-कागज का टुकड़ा है वह। अरे भईया! वह कागज का टुकडा नहीं, नोट है। आप ये 100 सिक्के इकट्ठे करोगे उससे तो यह एक नोट अच्छा रहेगा, बोला मुझे पहचान नहीं है। जब तक पहचान नहीं है तब तक व्यक्ति नोट फैंककर के बाहर के सिक्के ले लेता है, ऐसे ही जब तक तुम्हें स्थायी मार्ग की पहचान नहीं है तब तक तुम अस्थायी, क्षणिक सुखाभास के पीछे दौड़ जाओगे, जब तुम्हें पहचान हो जायेगी तब तुम सहजोपलब्ध भोगों की सामग्री को त्याग दोगे। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा-

यथा-यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्॥
तथा-तथा न रोचंते विषयाः सुलभा अपि॥

ज्यों-ज्यों आत्मा का रस आने लगता है, त्यों-त्यों व्यक्ति बाहर की वस्तुओं से विरक्त होता जाता है त्यों-त्यों उसके अंदर आत्मा का रस निःसृत होने लगता है। फिर उसे सुलभ विषय सामग्री, भौतिक सुख, सम्पत्ति, समृद्धि रुचती नहीं है।

महानुभाव! साधु कौन-सा धन चाहते हैं? फिर अगला धन है ज्ञान धन, रत्नत्रय धन, जिनगुण सम्पत्ति रूपी धन। आप लोग पढ़ते भी हैं-**(दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति-होऊ-मज्झं)** और धन है देव-शास्त्र-गुरु आप पढ़ते हैं-

''देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार''

ये तीन रत्न हैं अथवा सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र तीन रत्न हैं, ये सबसे श्रेष्ठ धन है। एक बार प्राप्त हो गया तो संसार का कोई भी प्राणी आपकी आत्मा से छीन नहीं सकता है, आपकी श्रद्धा को कौन छीन सकता है? आपका ज्ञान, आपका ध्यान, आपकी

शांति को कौन छीन सकता है? आपका संयम, आपकी क्रियाचर्या सब आपके हैं उसे कौन छीन सकता है। श्रावक के पास भौतिक धन नहीं है तो वह गरीब है, कंगाल है और साधाक के पास आत्म ज्ञान नहीं है, तत्त्व ज्ञान नहीं है, भेद ज्ञान नहीं है तो वह साधु भी कंगाल है, दरिद्र है। तत्त्व ज्ञान सहित साधु होता है और भौतिक साधन से सम्पन्न श्रावक होता है, धन की और भी परिभाषायें हैं-

विदेशेषु धनं विद्या, व्यसनेषु धनं मतिः।
परलोके धनं धर्मः, शीलं सर्वत्र वै धनम्॥

विदेशेषु धनं विद्या-विदेश में विद्या काम करती है, जिसके पास कोई कला है, विद्या है, हुनर है तो चाहे वह बिना धन के जाये व्यापार में कमाकर ही लायेगा और सम्पन्न हो जाएगा, शांति से अपना जीवन यापन कर सकता है। **व्यसनेसु धनं मतिः** व्यापार में प्रज्ञा की आवश्यकता है। प्रज्ञा जिसकी अच्छी है, जो चतुर है ऐसा व्यक्ति व्यापार में कुशल होता है। पूंजी कितनी भी लगाओ बुद्धि नहीं है तो लाभ के स्थान पर घाटा हो सकता है और जो व्यक्ति समझदार है समझ सकता है मौसम को, कब क्या घटित हो सकता है, वह छोटी सी पूंजी से भी अच्छा व्यापार कर सकता है। **''परलोके धनं धर्मः''** परलोक में धर्म ही धन है, परलोक में धर्म साधना करके जाना और कुछ तो साथ जाएगा नहीं। एक धर्म ही ऐसा है जो व्यक्ति के साथ दूसरे भवों तक जाएगा। **''शीलं सर्वत्र वै धनं''** नीतिकार कहते हैं शील सब जगह नियम से सबका धन होता है। वह कभी भी किसी को हानि नहीं पहुँचाता है, शील एक ऐसी चीज है जिसमें कभी पाप नहीं लगता। महानुभाव! फिर हम कौन से धन की चर्चा कर रहे हैं जो आचार्य चारों तरफ से कल्याणदायी उपदेश देने वाले, कल्याण करने वाले ऐसे सहज और सरल कुलभद्र स्वामी सार समुच्चय नामक ग्रंथ में लिखते हैं-

श्रुतं वृत्तं तपो येषां धनं परम दुर्लभम्।
ते नरा धनिनः प्रोक्तः शेषास्तु निर्धना मताः।।

आचार्य महोदय कह रहे हैं धन तीन हैं-श्रुत, व्रत और तप। श्रुत कहिये तो ज्ञान, व्रत कहिये तो क्रिया और तप कहिये तो श्रद्धा की प्रगाढ़ता। श्रद्धा ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ होती जाती है व्यक्ति त्यों-त्यों तपस्या की ओर आगे बढ़ता है। उसे मना भी करो तो कहेगा भईया! कर्मों का क्षय तो मुझे ही करना है। चाहे आज करूँ चाहे कल, मुझे ही चुकाना है अपना कर्जा, जो कर्म पहले किये हैं उन्हें नष्ट मुझे ही करना है। श्रुतं-अर्थात् स्वाध्याय, जिसके पास स्वाध्याय की कला है 'श्रु' धातु होती है सुनने के अर्थ में, 'त' तल्लीन होकर सुना जाये, जो श्रेयोमार्ग का कारण हो, जो अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी का कारण हो वह स्वाध्याय है और स्वाध्याय के मायने अपनी आत्मा का अध्ययन करना। अपनी आत्मा का स्वभाव क्या है? इसे हम ऐसे ही नहीं जान सकते, इसीलिए शास्त्र का आधार लेकर अपनी आत्मा का अवलोकन करना है, अपनी आत्मा को समझना, जानना अपनी आत्मा को पहचानना है। व्रत का अर्थ होता है हिसांदि पाँच पापों का त्याग। ये तो रूढ़िवशात् आप कहते हैं कि हम भक्तामर के, णमोकार के व्रत कर रहे हैं ये तो आपके सीमित व्रत हैं, कुछ समय के लिए हैं, वास्तव में व्रत आचार्य श्री उमा स्वामी जी महाराज के शब्दों में तो यहीं हैं-

''हिंसानृत-स्तेया ब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्''

जो हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म (कुशील), परिग्रह से विरक्त है वही वास्तव में व्रती है, व्रत अर्थात् सम्पूर्ण पापों का त्याग वह भी नवकोटि से। यह त्याग वही कर सकता है जिसने संसार की असारता को जान लिया हो, जो शाश्वत अवस्था को समझता है, जिसने अपनी आत्मा की शाश्वत अवस्था के बारे में सुना हो, जाना हो, पढ़ा हो, अनुभव किया हो, ऐसा व्यक्ति संकल्प लिये बिना नहीं रह सकता, व्रत लिए बिना नहीं रह सकता और जिसके पास ये व्रत नहीं हैं-

नियमेन विना प्राणी पशुरेव न संशयः।

व्रत-नियम-संयम के बिना व्यक्ति पशु के समान ही है और संसार में सबसे गरीब वही है जिसके पास स्वाध्याय करने का समय नहीं है, संसार में सबसे गरीब वही है जो अपने शरीर से कोई व्रत नहीं पाल सकता, न कभी हिंसा का त्याग कर सकता, न झूठ का, न चोरी का, न अब्रह्म का, न परिग्रह का। वह कहता है मेरे शरीर से पाप तो बहुत हो जाते हैं किन्तु अपने शरीर से मैं व्रत नहीं पाल पाता, वह संसार का बड़ा हीन व्यक्ति है उसकी दशा बड़ी दयनीय है, सोचनीय है। क्या जिस शरीर से पाप कर सकता है उससे पुण्य नहीं कर सकता? जिन वचनों से, मन से पाप कर लेता है, उनसे पुण्य नहीं कर सकता? अरे! कितना हीन व्यक्ति है, कितना अभागा है कि उसके मन, वचन, काय पाप के कार्यों में जाते हैं, उसका धन पाप कर्मों में लग जाता है। आचार्य महोदय कहते हैं **'तपो येषां'** तपः अर्थात् 'इच्छाओं का निरोध' जो व्यक्ति इच्छाओं का निरोध करने में समर्थ है जिसने अपनी सभी इच्छाओं को रोक दिया है वह वास्तव में धनी है। इच्छाओं का कुआँ जब खाली हो जायेगा तब उस कुएं में कोई भी बाल्टी डाली जाये उसमें पानी नहीं आयेगा, ऐसे ही हमारे मन में जब कोई इच्छा पैदा न हो तो संसार की कितनी ही अच्छी-अच्छी वस्तुएँ सामने हों वीतरागी प्रभु के सामने उनका कोई महत्व नहीं। महानुभाव! तपस्या-भोजन पानी का त्याग करना ही नहीं है। उपवास करना भी है, ऊनोदर करना भी है, विविक्त शय्यासन भी अंतरंग तप है किन्तु मूल में तप की परिभाषा है इच्छाओं का निरोध। **''धनिनः परम दुर्लभं''** ऐसा श्रुत-व्रत-तप रूपी धन संसार में महादुर्लभ है ये संसार में सबके पास नहीं होता।

मूढे पाषाण खण्डेषु रत्न संज्ञा विधीयते।

मूर्ख व्यक्ति पाषाण के टुकड़ों को रत्न की संज्ञा देते हैं। अरे! इन पाषाण के टुकड़ों को जोड़कर अपने आप को धनी मानते हो तो तुममें और इन मूर्खों में क्या अंतर रहा। एक बालक हाथ में चमकते पत्थर

लेकर कहता है कि ये रत्न हैं, कागज के टुकड़ों को नोट बनाकर बच्चे आपस में खेलते हैं या मिट्टी के घरोंदे बनाकर खेलते हैं और वह बच्चा कुर्सी पर खड़ा होकर कहता है पापा में बड़ा हो गया, जैसे कौआ मंदिर के शिखर पर खड़ा होकर कहे मैं बहुत बड़ा हूँ। पुद्गल के पत्थरों को रखने से तुम अपने को बड़ा कहते हो। बड़ा व्यक्ति बनता है बड़प्पन से। आत्मा बड़ी होती है आत्मा के गुणों से, धन से संसार में कोई बड़ा नहीं होता।

महानुभाव! जो धन बड़ा बनाने वाला है उस धन से आज तक आपका परिचय ही नहीं हुआ, अभी तो तुम बच्चों की तरह से काँच के टुकड़ों को पकड़कर के कहते हो कि तिजोरी में रत्न रखे हैं, जो नोट के बंडल हैं जिन पर भारत सरकार की मोहर लगी है वचन लिखा है मैं धारक को इतने रुपये देने का वचन देता हूँ। यदि ये नोट चलन से बाहर भी हो गया तब भी आपको उस नोट के बराबर सोना दे दिया जायेगा और यदि वचन न हो, मोहर न हो, नोटों के बंडल होते हुए भी कंगाल हो गया किन्तु धन वह होता है जिसे कोई छीन न सके। धन वह आत्मवैभव है जिसे कोई छीन न पाये वही सच्चा धन होता है। भौतिक धन किसे मिलता है? जो भौतिक धन का त्याग करता है, जिसने भी भौतिक धन का त्याग किया उसे मिला, जिसने चक्रवर्ती जैसे पद को प्राप्त कर भगवान् की भक्ति की हो ऐसा व्यक्ति सौधर्म इन्द्र बनने का अधिकारी होता है। चक्रवर्ती कौन होता है? जो अपने पुण्य को चक्रवर्ती ब्याज की तरह से निरंतर बढ़ाता ही रहता है वह चक्रवर्ती होता है। कोई वस्तु तुम्हारे पास है तुमने उसका त्याग किया तुम्हें उससे उत्कृष्ट वस्तु मिल जायेगी।

कोई भी तीर्थंकर महापुरुष हों वह पुण्य के बिना तो बना नहीं। जब पुण्य है तो कहते हैं पुण्य ऐसा प्रकाश है जिस प्रकाश में आत्मा गमन करती है, उसकी परछाईयाँ भिन्न-भिन्न पड़ती है। ये परछाईयाँ हैं, कोई लक्ष्मी है, कोई समृद्धि है, कोई भौतिक सुख है, कोई इष्ट जन

है ये सब परछाईयाँ हैं पुण्य की। कई बार आप कहते हैं कि लक्ष्मी तो पुण्य की चेरी है, पुण्य तेरे पास से चला जाएगा तो वह लक्ष्मी भी चली जायेगी। जब तक पुण्य का काल है, तब तक पुण्य की आज्ञा में रह सकती है किन्तु तेरी आज्ञा में नहीं रह सकती। लक्ष्मी, जिसके विषय में लोग कहते हैं यह वेश्या की भाँति चंचला है, बिजली की चमक की तरह से है इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता, लक्ष्मी भोगने के योग्य तो है परन्तु विश्वास करने के योग्य नहीं है। परमात्मा भोगने में तो नहीं आता किन्तु विश्वास करने के योग्य है, परमात्मा विश्वास के योग्य है और लक्ष्मी भोगने के योग्य, लक्ष्मी तो चंचला है पंख लगा के आती है उड़ जाती है। जो पंख लगाकर के उड़े फिर भी दिखाई दे जाए उसे पकड़ने का प्रयास किया जा सकता है। किन्तु जो बिना पंख के उड़ जाए, कपूर की डली रखी है पंख लगा के उड़ेगा क्या? नहीं, देखते ही देखते कपूर उड़ गया, उसे पकड़ भी नहीं सकते। ओस आपको दिखाई दे रही है किन्तु उड़ जाती है, सूर्य का उदय होते ही पकड़ में आती है क्या? पानी वाष्प बन करके उड़ जाता है। यदि लक्ष्मी पंख लगा करके उड़ती तो उसे जाल डाल कर पकड़ लेते किन्तु लक्ष्मी को कभी पकड़ा नहीं जा सकता। यदि जाल डालोगे तो निकल जाएगी जब तक पुण्य का उदय रहता है वह साथ रहती है, रहती ही नहीं पीछा करती है।

लक्ष्मी पुण्यात्मा का पीछा करती है और पापी को छोड़ करके भागती है। पापी लक्ष्मी का पीछा करता है और पुण्यात्मा लक्ष्मी को छोड़कर भागे तो भी लक्ष्मी उसका पीछा करती है। पापी कैसा है जैसे कोई व्यक्ति अपनी परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ रहा है। वह दौड़ता जा रहा है, परछाई आगे-आगे जा रही है वह परी की तरह से है, दिखाई तो देती है पकड़ में नहीं आती और पुण्यात्मा कैसा है, उसी परछाई को पीठ देकर भाग रहा है फिर भी परछाई उसका पीछा नहीं छोड़ रही। पुण्यात्मा कभी पकड़ता नहीं और पापी पकड़ने का

प्रयास करता है किन्तु पकड़ पाता नहीं। पुण्यात्मा पकड़ता नहीं पकड़ना चाहता नहीं, वह लक्ष्मी उसकी पकड़ में भी आ जाए और कहे मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगी, वह कहेगा मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं, तुझ जैसी चंचला पर मुझे विश्वास नहीं। मैं तो उसे चाहता हूँ जो मेरी सती बन करके रहे, जो मेरे साथ सती हो जाए, जहाँ मैं जाऊँ मेरे साथ वहीं जाए, मुझे वेश्या की तरह नहीं चाहिए। आज इसकी है, कल उसकी है, परसो किसकी होगी कह नहीं सकते।

ऐसी वेश्या स्वभाव वाली लक्ष्मी को जो विश्वास के योग्य मानता है वह निःसंदेह अपनी आत्मा को ठग लेता है। लक्ष्मी विश्वास के योग्य तो नहीं है। हाँ! उपयोग के योग्य हो सकती है। भला आदमी तो उपयोग ही नहीं करेगा वह कहेगा क्यों पड़े हो चक्कर में, छोड़-छाड़ कर भाग जाओ ना जंगल में, और जो कम भला आदमी है वह कहेगा अच्छे से इसका उपयोग करूँगा। जो बुरा आदमी है वह उसका दुरुपयोग करेगा जैसे वेश्या आकर खड़ी हो जाए किसी साधु के पास तो वह क्या करेगा? उसकी ओर अपनी पीठ कर लेगा, वहाँ से चला जायेगा और यदि किसी कम भले आदमी के पास वेश्या आ जाए तो उसे समझायेगा देखो यह अच्छा नहीं है, अपने इस अमूल्य नर भव को क्यों गँवाती हो और बुरा आदमी है तो उससे हँसी-मजाक करेगा और ज्यादा बुरा है तो उसका सेवन करेगा तो लक्ष्मी तो वेश्या की तरह से है। इसका ज्यादा सेवन करना उचित नहीं है और धन पैर के जूते के बराबर है। पैर में जूता पहनना ठीक है किंतु तब कि जब कहीं काँटों वाले रास्ते पर जाओ तो पैर में जूता पहन लो और यदि फूलों के रास्ते पर जाओ तो जूता पहनने की आवश्यकता नहीं है।

मोक्ष का मार्ग काँटों का मार्ग नहीं, मैं तो कहता हूँ कि फूलों का मार्ग है। इस पर धन के जूते पहनना जरूरी नहीं है। नंगे पैर जाओगे तो ज्यादा अच्छा लगेगा। जूतों की आवश्यकता तो कंकरीले, पथरीले मार्ग पर होती है। धन की आवश्यकता तो वहाँ होती है जो आपका जीवन

है काँटे भरा जीवन, गृहस्थ जीवन, प्रतिकूलताओं से युक्त जीवन, वहाँ धन जूते की तरह से आवश्यक है किन्तु आत्मा का धन (ज्ञान) शस्त्र की तरह से होता है। यदि आप कहीं जा रहे हैं और आपके पास शस्त्र है तो आप सुरक्षित हैं।

महानुभाव! आत्मविश्वास हो कि लक्ष्मी को छोड़ना अच्छा है। मान लो आवेश में छोड़ दिया और बाद में लौटकर नहीं आयी तो फिर तुम उसके पीछे-पीछे जाओगे। जैसे चंद्रनखा लक्ष्मण के पास आयी, लक्ष्मण ने कह दिया मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता, मेरे बड़े भाई के पास जाओ। राम के पास गई तो बोले तुम पहले लक्ष्मण के पास गई थीं इसीलिए अब मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता। तुमने पहले छोटे भाई को चाह लिया तो तुम मेरी पुत्रवधु, पुत्री के समान हुई। लक्ष्मण के पास लौटकर आई तो लक्ष्मण बोला अब मैं आपको स्वीकार नहीं कर सकता, पूछा क्यों? बोले तुम बड़े भाई के पास चली गईं, तुमने बड़े भाई को अपने मन में चाह लिया, बड़ा भाई पिता के तुल्य होता है, तुम मेरे लिए माँ के तुल्य हो गई। महानुभाव! लक्ष्मण ने बुद्धिपूर्वक मना किया, छोडा तो वह चंद्रनखा के पीछे नही गया किंतु चंद्रनखा आवेश में गई तो उसके मन में भावना बनी रही। तो जो बुद्धिपूर्वक त्याग करता है तब वस्तु चाहे सामने खड़ी हो तब भी आँख बंद कर लेता है उसमें आसक्त नहीं होता।

महानुभाव! नीतिकार कहते हैं 100 हाथों से कमाओ, हजार हाथों से दान करो, तुम्हारा खजाना कभी खाली नहीं हो सकता। जो दो हाथ से कमाता है और एक हाथ से दान करता है उसका खजाना हमेशा खाली रहता है। इसीलिए कहा दान तो दोनों हाथों से दो। अभिषेक करो दोनों हाथों से करो। कमा भले एक हाथ से लेना किन्तु दान हमेशा दोनों हाथों से ही देना चाहिए। जो दोनों हाथों से लुटाता रहता है उसका खजाना कभी खाली नहीं होता।

महानुभाव! भगवान् महावीर स्वामी जब राजकुमार अवस्था में थे उस समय एक मौन वार्तालाप हुआ लक्ष्मी का व महावीर स्वामी का। लक्ष्मी ने कहा मैंने सुना है तुम माता-पिता को छोड़कर, राज्य को छोड़कर दीक्षा लेने जा रहे हो, कुमार वर्द्धमान ने कहा-तुमने ठीक सुना है मैं दीक्षा लेने जा रहा हूँ। अरे! क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे। मैं तुम्हारे पीछे घूमती हूँ। तुम्हारे में तो मेरे प्राण बसते हैं, मैं तुम्हारे बिना कैसे जी सकूँगी? लक्ष्मी की प्यार की ये भाषा अलग होती है, वेश्या की तरह से प्यार भी कई प्रकार का होता है। एक प्रेम वह जो आँख बंद करके किया जाता है अपने प्रभु से, गुरु से, परमात्मा से। हमारे परोक्ष में हैं तब भी आँख बंद करते ही सामने आ जाते हैं। एक प्रेम वह है जो आँख बंद होने तक किया जाता है। जब तक आँख खुली है तब तक प्रेम है, आँखें मुंदी तो प्रेम गया। तीसरे प्रकार का प्रेम वह है जो आँखें खोल करके, आँखों से मुस्कुराते हुए किया जाता है।

पहला प्रेम जो आँख बंद करके किया जाता है, वह भक्त के द्वारा होता है भगवान् के लिए। दूसरा प्रेम जो आँख बंद तक किया जाता है वह माँ का प्रेम होता है अपने पुत्र के लिए, जब तक आँखें खुली हैं तब तक माँ को अपने बेटे के लिए प्रेम रहेगा। अस्वस्थ भी पड़ी है तब भी बेटे के लिए दया है, करुणा है, स्नेह है, वात्सल्य है। मृत्यु शय्या पर भी पड़ी माँ की आँखों में आँसू अपने बेटे के लिए हैं मेरा बेटा छोटा है उसका क्या होगा? मृत्यु की गोद में आ गई तब भी आँखें जब तक खुली हैं माँ का प्रेम अपने पुत्र के लिए रहेगा। और तीसरा प्रेम है वेश्या का। लक्ष्मी ने मौन भाषा मे राजकुमार महावीर से कहा तुमने ऐसा सोच कैसे लिया कि तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे, मैं तुम्हें नहीं छोडूँगी। वर्द्धमान ने कहा तुमने मुझे अभी जाना नहीं, तुमने मुझे विश्व के अन्य पुरुषों की तरह समझ लिया, मैं तुम्हारी समझ के बाहर हूँ। मैं वह हूँ जो देखने में आता हूँ, पर पकड़ में नहीं आता। कई चीज ऐसी होती हैं जो अनुभव में आती हैं, पर पकड़ में नहीं।

लक्ष्मी ने कहा–चाहे तुम देखने में आओ, चाहे पकड़ने में आओ, चाहे देखने या पकड़ने दोनों में न आओ किन्तु मेरा संकल्प है मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं। महावीर स्वामी ने कहा अच्छा ऐसी बात है देख लेंगे, अब मैं दीक्षा के लिए चलता हूँ। वे वर्द्धमान जिनके गर्भ में आते ही–

श्री वृद्धि सर्वत्र हुई थी, जनता ने सुख पाए थे,
इससे जग में त्रिशलानंदन, वर्द्धमान कहलाए थे।

तो वर्द्धमान कहते हैं बस मैं चलता हूँ। चंदना भी समझाने के लिए आई वर्द्धमान को, वर्द्धमान मैंने सुना है तुम दीक्षा लेने की बात कह रहे हो, हाँ मौसी, तुमने ठीक सुना है, लेकिन क्यों? इसीलिए क्योंकि संसार में मुझे कोई भी सारभूत वस्तु दिखाई नहीं देती। चंदनबाला समझाने लगी तब वर्द्धमान ने पूछा मौसी तुम शादी क्यों नहीं करा लेती, बोली शादी करने से कोई लाभ नहीं, सुख–शांति नहीं है। आत्मा का सुख शादी करके प्राप्त नहीं किया जा सकता। जब तुम शादी नहीं करना चाहती, मानती हो संसार में दु:ख है शादी के बाद, तो मुझसे शादी की बात क्यों करती हो? मुझे भी आत्मिक सुख को प्राप्त करना है, जीव की शुद्धावस्था को पाना है। वे किसी के समझाने से नहीं समझे, ले ली दिगम्बर दीक्षा, बैठ गये ध्यान में। लक्ष्मी ने देखा सोचा कब तक बैठे रहेंगे ध्यान में, कभी तो जाएँगे आहार करने, जैसे ही आहार करने श्रावक के यहाँ पहुँचे लक्ष्मी भी पहुँच गई पीछे–पीछे और कर दी रत्नों की वर्षा।

महावीर स्वामी ने पीछे मुड़कर देखा अरे! लक्ष्मी यहाँ भी आ गई। लक्ष्मी पीछे खड़ी–खड़ी इठला रही है, मुस्कुरा रही है देखो छोड़कर आ गए लेकिन मैंने तो नहीं छोड़ा। तुम्हारा पीछा मै छोड़ूँगी नहीं। महावीर स्वामी ने कहा ठीक, ऐसी बात है, आज से आहार का त्याग, मैं आहार ग्रहण नहीं करूँगा। बैठ गए ध्यान में, क्षपक श्रेणी चढ़ी और बन गये केवलज्ञानी। जैसे ही केवलज्ञानी बने सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने बहुत बड़ा समवशरण रच दिया, सैकड़ों चक्रवर्तियों की विभूति लाकर

रख दी। सब जगह वैभव ही वैभव, नीचे तो वैभव, ऊपर तो वैभव, अशोक वृक्ष, छत्र, सिंहासनादि सब। भगवान् महावीर स्वामी उसके बीच में, लक्ष्मी फिर इठला रही है अब कहाँ जाओगे? देखो यहाँ पर भी मैं हूँ। भगवान् महावीर स्वामी ने कहा अच्छा तेरी इतनी हिम्मत उन्होंने समवशरण का भी त्याग कर दिया दिव्यध्वनि खिरना बंद हुई और योग निरोध का निश्चय कर लिया। योग निरोध करने के लिए जैसे ही विहार किया तो चरणों के नीचे 225 स्वर्ण कमलों की रचना हो गई। लक्ष्मी खुश हो रही है अब कहाँ जाओगे, मेरे हृदय पर ही पैर रखकर जाओगे। महावीर स्वामी ने कहा मैं तुझसे चार अंगुल ऊपर रहूँगा तुझको स्पर्श नहीं करूँगा पुनः वर्द्धमान स्वामी ने योग निरोध किया, मोक्षगामी बन गए। लोग तो यह भी कहते हैं कि मोक्ष रूपी लक्ष्मी वहाँ पर इठला रही है। लक्ष्मी बोली-अब कहाँ जाओगे? महानुभाव! जो लक्ष्मी यहाँ पर है वह मोक्ष में नहीं और जो मोक्ष में है वह यहाँ पर नहीं। संसार की यह लक्ष्मी विश्वास के योग्य नहीं है, गृह लक्ष्मी जो अपनी पत्नी के लिए संबोधित करते हैं, मैं नहीं कहता कि वह विश्वास के योग्य नहीं है। किन्तु सत्यता तो यही है कि धन लक्ष्मी और गृह लक्ष्मी दोनों विश्वास के योग्य नहीं हैं। इन पर विश्वास करके व्यक्ति अपनी आत्मा के वैभव से वंचित रह जाता है। केवल ज्ञान लक्ष्मी व मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करना है तो इन दोनों लक्ष्मी को छोड़ना पड़ेगा। इन्हें छोड़े बिना उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

महानुभाव! आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे थे-जिनके पास श्रुत-व्रत-तप आदि हैं वे ही धनी हैं शेष तो निर्धन हैं, दरिद्र हैं। आप सभी लोग भी यदि वास्तव में धनी बनना चाहते हैं, कौन धनी त्रिशला के महल का? धनी यानि धन का स्वामी। धन के स्वामी तो वहीं हो सकते हैं जिनसे धन कभी अलग न हो और यदि धन अलग हो जाए तो यह तो अनात्मभूत लक्षण हुआ। जैसे किसी दण्डी पुरुष का लक्षण दण्ड, जो अलग हो सकता है वह धनी नहीं। धनी धन का वही है

जो एकमेक हो जाये। मेरी आत्मा और मेरी आत्मा के गुण ही धन हैं। बाहर का धन कभी सच्चा धन नहीं हो सकता। तो धनी बनो, त्रिशला के महल का धनी ही मोक्ष लक्ष्मी का धनी हो सकता है। यूँ तो आप अपनी माँ के महल के धनी हो, किन्तु तुम्हारी माता का महल माँ के पुण्य से है और हो सकता है यदि तुम्हारे भाग्य में न हो तो तुम्हें ना मिले किन्तु त्रिशला का महल उनके पुण्य से नहीं वर्द्धमान के पुण्य से सौधर्मेंद्र की आज्ञा से कुबेर ने उसकी रचना करवाई थी।

वह जो महल बना उसका धनी, मालिक कौन है? दरअसल में हम अपनी मालकियत दिखाते हैं सच्चे मालिक नहीं हैं। मालकियत दिखाना अलग बात है और मालिक होना अलग बात है। एक व्यक्ति मालिक होते हुए भी सब कुछ कर रहा है, आप किराये के मकान मे रहते हैं उसका मालिक कौन है? अन्य व्यक्ति, और उसका उपयोग कौन कर रहा है? आप। आपने कोशिश की तो उसका उपयोग आप कर रहे हैं किन्तु जो मालिक है उसने आज तक उसका उपयोग नहीं किया। होटल में जो सामग्री है वह किसकी? होटल के मालिक की परन्तु उसने उसका उपयोग कभी नहीं किया। तो ऐसे ही मालिक और मालकियत दोनों में अंतर है। ऐसे मालिक होने का भी कोई लाभ नहीं जिसका तुम उपयोग न कर सको और ऐसी वस्तु का भी कोई लाभ नहीं जो हमसे कोई छीन ले। सच्चा मालिक वही है जो वस्तु का उपयोग भी करे और उसे कोई छीन न सके।

यदि आप लोग भी वास्तव में धनी बनना चाहते हैं तो निर्धनपने को छोड़ो। पाप निर्धनपना है इसे छोड़ोगे तो पुण्य आएगा, धनीपना आएगा। यहाँ-वहाँ की अज्ञानता की बातें निर्धनता है, ज्ञान की चार बातें धनीपना है। आपकी इन्द्रियविषयों में स्वच्छंद प्रवृत्ति निर्धनपना है और तपस्या करना धनीपना है। आप स्वयं अपने आप के आत्मवैभव के धनी बनो। निर्धनता को छोड़ो, निर्धनता को छोड़े बिना धनीपना नहीं आ सकता, धूप को छोड़े बिना छाया नहीं आ सकती। हम निर्धनपने को,

गरीबी को, अपनी टूटी झोंपड़ी को छोड़ना न चाहें और चाहें कि हम बन जायें धनी त्रिशला के महल के, तो क्या ये सम्भव है? त्रिशला के महल का धनी वो तब बना जब सोलहकारण भावना उसने पहले भायी थी। त्रिशला के महल का धनी वह तब बना जब त्रिशला के महल में उसे आसक्ति न थी, जब वह अपनी आत्म निधि का स्वामी बन गया।

महानुभाव! इसीलिए आज आप कहते हैं कौन धनी त्रिशला के महल का, फिर क्या कहते हैं, महावीरा, महावीरा महावीरा। जो महावीर है, वीर है, अच्छी बुद्धि वाला सन्मति है, जो शुरू से ही वर्द्धमान रहा हो, हीयमान, ह्रासमान न हो तभी वास्तव में त्रिशला के महल का धनी बना। इन्हीं गुणों को धारण करने वाला त्रिशला के महल का धनी बन सकता है। मेरी आप सभी लोगों के प्रति यही मंगल भावना है कि आप सभी त्रिशला के महल के धनी बनें। त्रिशला के महल के धनी, तीन लोक के धनी, सिद्धशिला के धनी, वही आपका और सभी का शाश्वत स्वभाव है। बस हमें उसी को प्राप्त करना है, यही हमारा परम पुरुषार्थ होगा। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ मैं अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''जैनं जयतु शासनम्''

आई वॉन्ट पीस

महानुभाव! कई बार जीवन में ऐसा होता है कि हम बहुत बड़ी-बड़ी बातें सोचते हैं किन्तु वे बातें हमारे सिर के ऊपर से निकल जाती हैं। जहाँ पर हम चल रहे हैं हमारा कर्त्तव्य है पहले वहाँ पर देखें, हमारी दृष्टि यदि सदैव मंजिल पर टिकी रहेगी तब नि:संदेह जहाँ पर कदम रखा जा रहा है वहाँ ठोकर नहीं लगेगी। ऊँची-नीची जमीन होने से, ऊबड़-खाबड़ होने से हम टकरा करके गिर सकते हैं इसीलिए भविष्य की लंबी कल्पनायें करना, भविष्य के लिए बड़े-बड़े अरमान सजाना ये व्यक्ति के लिए तब तक लाभदायक नहीं होता जब तक वह वर्तमान के कदमों को ना सम्हाल सके।

महानुभाव! आज चर्चा करनी है ''आई वॉन्ट पीस''। मैं समझता हूँ शायद 'every person want peace' कोई चाहे देव हो, तिर्यंच हो, मनुष्य हो, नारकी हो, कोई भी प्राणी हो शांति चाहते हैं। Each & Every creature wants peace इस बात को शायद आप स्वीकार करते हैं किन्तु मेरी धारणा कुछ different है, मैं यह स्वीकार नहीं करता कि संसार के सभी प्राणी शांति चाहते हैं। सत्यता तो ये है कि मैं आप से ही पूछूँ तो बड़ा मुश्किल है आप में से कोई एक भी निकल आए जो कहे मैं शांति चाहता हूँ। आप कहेंगे महाराज जी! शांति तो सब चाहते हैं एक छोटे बालक से ले करके बड़े वृद्ध पुरुष तक सब शांति चाहते हैं, नहीं, शांति कोई विरला व्यक्ति चाहता है। आप कहेंगे महाराज जी! आप कैसी बात कर रहे हैं, क्या सभी प्राणी शांति नहीं चाहते? वे शांति किसी दूसरे प्रकार की चाहते हैं। उन्होंने शांति का आशय किसी और चीज से लगा लिया है। कहने को आप भी कह सकते हो कि आप शांति चाहते हैं किन्तु आप वह चाहते हैं जिसे आपने अपनी धारणा में शांति मान लिया है। शांति मानने से शांति नहीं होती है। वास्तविक शांति ही शांति है।

कोई व्यक्ति सूर्य को चन्द्रमा कह दे तो क्या सूर्य चन्द्रमा हो जाएगा? कोई व्यक्ति चींटी को हाथी कह दे तो क्या चींटी हाथी हो जायेगी? किसी व्यक्ति के कहने से पहाड़ समुद्र हो जाएगा क्या? कोई दिन को रात कह दे तो रात कैसे होगी? ये धारणा तो संसार की अनादिकाल से चली आ रही है, इन धारणाओं के बीच फँसा हुआ मानव आज तक परम शांति को प्राप्त नहीं कर सका। शांति संसार में ना दुर्लभ है, ना दु:साध्य है, ना दूर है, ना असंभव है। शांति तो हमारे पास है, निकट है, बहुत सन्निकट है और यूँ कहें हमारे अन्दर ही शांति है किन्तु हमारे पास इतनी फुरसत कहाँ है कि हम देख सकें। अरे! पैन तो तुम्हारे कोट की जेब में लगा हुआ है तुम बाहर दौड़ रहे हो, पूरे घर को छान मारा, पूरे मौहल्ले को देख लिया, पूरे नगर को देख लिया लेकिन जहाँ पर रखा है वहाँ तो देखा ही नहीं।

एक यात्री यात्रा कर रहा था, दिल्ली से शिखर जी की ओर जा रहा था। विचारों में बहुत डूबा रहता था। उसने अपना टिकट कहीं रख दिया, ट्रेन में टी.टी. आया और बोला ''कहाँ है टिकट''। वह यात्री अपना टिकट देखने लगा। शर्ट की जेब, पेन्ट की जेब, सूटकेस खोला, बैग खोला सब फैलाकर डाल दिया। टी.टी. ने कहा कि ढूंढ लो तब तक मैं दूसरे को देखता हूँ। थोड़ी देर बाद टी.टी आया, व्यक्ति टिकट खोज ही रहा था देखकर टी.टी. आगे निकल गया। तीसरी बार टी.टी. फिर आया बोला भाई तुमने सब जगह देख लिया, बैग खोल के, सूटकेस खोलकर एक-एक कपड़ा झाड़कर देख लिया, ऐसा तो नहीं तुमने टिकट लिया ही ना हो। यात्री बोला टिकट तो मैंने लिया है टिकट नं. 1007 लिया है। ना जाने कहाँ गुम गया। टी.टी. बोला तुमने सब पॉकेट देख ली, क्या तुम्हारी बनियान में भी जेब है, यात्री बोला ''हाँ है, टी.टी. बोला तो इसको क्यों नहीं देखा।''। यात्री बोला-देखो भईया! अब सिर्फ और सिर्फ एक ही उम्मीद है कि टिकट वहीं रखा है किन्तु यदि वहाँ नहीं मिला तो फिर कहाँ देखूँगा, उम्मीद भी खत्म

हो जाएगी। तो महानुभाव! वह व्यक्ति जहाँ टिकट रखा है वहाँ नहीं देखता है, बाकी सब जगह देखता है। अब यदि सब जगह देख भी ले तो मिलेगा कहाँ से?

हम लोग भी तो प्रायः करके ऐसा ही तो करते हैं। जहाँ पर सुख और शांति है वहा पर तो कभी देखने का प्रयास किया ही नहीं यदि वहाँ देखने का एक बार भी प्रयास किया होता तो जीवन में अशांति की दशा नहीं होती। एक साथ घना अंधकार और सूर्य का प्रचंड प्रकाश दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि सूर्य का प्रचंड प्रकाश है तो घना अंधकार नहीं और जहाँ घना अंधकार है वहाँ सूर्य का प्रचंड प्रकाश नहीं। दोनों एक साथ कैसे मिलेंगे? जहाँ शांति है वहाँ है, वहाँ और कुछ नहीं। जहाँ और कुछ है वहाँ शांति नहीं। वैदिक परम्परा वाले बताते हैं-

''जिसने सूरज चाँद बनाया, धरती और आकाश बनाया।
जिसने हमको जन्म दिया है, पालपोसकर बड़ा किया है।

वे मानते हैं भगवान् ने हमको बड़ा किया सूरज, चाँद बनाये प्रकृति की संरचना की। परमात्मा जो चाहे सो कर सकता है ऐसा वे मानते हैं।

एक क्षण के लिए हम भी मान लें जिस परमात्मा ने रेवाड़ी (शहर का नाम) को बनाया, तुमको बनाया, तुम्हारी Family बनायी वह परमात्मा कुछ समय पहले रेवाड़ी में बाजू वाले कोने पर रहता था। परमात्मा भी परेशान हो गया, दिन में सैकड़ों बार लोग जायें, परमात्मा धूप दिखाओ। दूसरा कहता, नहीं, पानी बरसना चाहिए वरना मेरा खेत सूख जाएगा। तीसरा कहता है ठंडी हवा चले, चौथा कहता है कि ठंडी ना पड़े। परमात्मा परेशान, इतने लोग उसके पास जायें, परमात्मा को तो बड़ी मुश्किल हो गई। क्या करें, एक कहता है कड़ाके की धूप करो, एक कहता है पानी बरसाओ, परमात्मा ने कहा भाई मैंने तो झंझट मोल ले ली जो तुम लोगों को बना दिया, नहीं बनाता तो अच्छा रहता।

''दुनिया बनाने वाले, क्या तेरे मन में समायी''

वो दुनिया बनाने वाला वैदिक परम्परा का जो भगवान् है वह बड़ा परेशान हो गया, सोचने लगा कि जीवन में सबसे बड़ी गलती यही की, मैंने दुनिया बना दी, अब क्या करना चाहिए? वह परमात्मा एक दिगम्बर साधु के पास गया महाराज! अब आप ही मेरे प्राण बचा सकते हो, दिगम्बर साधु ने उनकी परेशानी को सुना और तुरन्त कान में एक मंत्र फूँक दिया और ऐसा मंत्र फूँका कि वह परमात्मा ऐसी जगह जाकर के बैठा है जहाँ आज तक उसके पास कोई शिकायत करने नहीं गया। आप सोच रहे होंगे कहाँ पहुँच गया, समुद्र में इंसान है, वह समुद्र के तल तक घूम कर आ जायेगा, वह पहाड़ की चोटी ना छोड़ेगा, जंगल में घने से घने जंगल हों, निर्जन स्थान पर भी वह इंसान पहुँच जायेगा।

इस काले सिर वाले के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है वह सब जगह पहुँच जाता है। किन्तु एक जगह ऐसी है जहाँ नहीं पहुँच पाता, आज तक वहाँ पर कोई भी व्यक्ति शिकायत लेकर के नहीं गया और जो शिकायत लेकर गया वह वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाया है, कहाँ है वह स्थान सिद्धालय? नहीं, वहाँ तो अनन्तानन्त निगोदिया जीव भरे पड़े हैं तो और कौन-सी जगह है, अरिहंत भगवान् के समवशरण में? नहीं। मुनि महाराज ने उनके कान में मंत्र पढ़ दिया था, बस तू इंसान की आत्मा के बीच में छिपकर बैठ जा, उसकी आत्मा के प्रदेशों में बस जा जब भी कोई मुनि, त्यागी, व्रती ध्यान में लीन होगा, एक विकल्प भी शेष होगा तो आत्मा में नहीं जा सकता, आत्मा में पहुँच गया तो कोई विकल्प वहाँ पहुँच नहीं सकता। दो में से एक चीज जायेगी या तो विकल्प या आत्मा, उसका उपयोग।

कहा जाता है तब से परमात्मा बहुत सुखी है। उसके पास शिकायत लेकर कोई पहुँचा ही नहीं। शांति तो आत्मा में है। यदि वही शांति तुम सब लोग चाहते हो तो अपने अंदर जाना पड़ेगा। मुझे तो नहीं लगता यदि सभी को एक कागज-पैन दे दिया जाये और कह दिया जाये कि इस कागज पर एक इच्छा लिखो तो सबकी इच्छायें वैसी ही लिखी जायेंगी जैसी एक महात्मा जी ने लिखवाई थी।

एक गुरु और चेला थे, चले जा रहे थे। उस गुरु की बहुत ख्याति थी कि यह बहुत पहुँचे हुए महात्मा हैं, इन्हें ऋद्धियाँ सिद्ध हैं जिसको जैसा कह दें उसको वैसी प्राप्ति हो जाती है। नगर के लोगों ने बहुत आग्रह किया रोका, प्रार्थना की, महाराज धर्म का उपदेश दीजिए किन्तु गुरु ने उपदेश नहीं दिया, दूसरे गाँव में पहुँचे वहाँ भी नहीं दिया, तीसरे गाँव में पहुँचे वहाँ भी नहीं दिया। चेला को थोड़ा खराब लगा उसने सोचा गुरु कैसे हैं? इन्होंने दीक्षा ली, संन्यास लिया अपने और पर के कल्याण के लिए, चार शब्द उन्हें सुना देते तो क्या हो जाता। कितनी तीव्र भावना थी लोगों की, कितनी तीव्र प्यास थी लोगों की। गुरु ने कुछ नहीं कहा मौन लेकर चले गये। जब आश्रम पर पहुँचे तो शिष्य से रहा नहीं गया, उसने कहा-गुरुदेव! क्षमा करें मुझे एक बात समझ नहीं आयी, आप से नगर के लोग इतनी प्रार्थना कर रहे थे उपदेश देने के लिए किन्तु आपने कुछ भी नहीं कहा-क्या हुआ? गुरु ने कहा वत्स! मुझे उनमें से कोई भी व्यक्ति उपदेश सुनने वाला नहीं लगा। अरे महाराज! इतने सारे सैकड़ों लोग उपदेश सुनना चाहते थे, नहीं वत्स! ये तुम्हारी भूल है।

इन्सान भ्रम में जीता है, भूल में जीता है, होता कुछ और है दिखता कुछ और है। ऐसे कैसे? यदि यह पंखा चालू कर दिया जाये तब तुम्हें क्या दिखेगा?

एक सर्किल, तीन पाखुंडी दिखाई देंगी क्या? जो है वह दिखाई नहीं देता जो नहीं है वह दिखता है। यदि कोई आग लगी लकड़ी को घुमाये तो ऐसा लगेगा जैसे आग का ही गोल सर्किल हो, लकड़ी दिखाई नहीं देगी यही संसार की रीति है। जो है नहीं, इसी को कहते हैं मृग मरीचिका, illusion, इसे कहते हैं भ्रम, इसे कहते हैं वहम, इसे कहते हैं मिथ्यात्व।

शिष्य ने कहा- गुरुदेव आपका कहना ठीक है, पर किस-किस ने नहीं कहा आपके उपदेश सुनने के लिए। गुरुदेव ने कहा ठीक है-एक

काम करो, उन्होंने अपने सभी 100-200-300 शिष्यों को बुलाया और कहा-एक-एक रजिस्टर लेकर जाओ, रास्ते में जितने भी गाँव पड़े उन सभी में जाना, एक-एक घर में जाकर सभी सदस्यों के नाम पूछकर लिस्ट बनाना उन सभी से पूछना तुम सबको क्या-क्या चाहिए। हमारे गुरुदेव को बहुत बड़ी सिद्धि हो गयी है जो कुछ भी आपको चाहिए वह सब आपको प्राप्त होगा। वे सभी शिष्य गये और घर-घर जाकर उन्होनें सबकी इच्छायें लिखी। कोई पक्का मकान चाहता था, कोई बैंक बैलेंस चाहता था, कोई नौकर-चाकर चाहता, कोई गाड़ी बंगला, कोई ऊँचा पद चाहता सबने अपनी अलग-अलग इच्छायें लिखीं, 10-20 गाड़ियाँ रजिस्टरों से भरकर संत के पास आईं, शिष्यों से कहा अब इन्हें पढ़ो, सुनकर के आपको आश्चर्य होगा, सभी रजिस्टर पढ़ लिये, उनमें से किसी में भी एक जगह भी नहीं लिखा था कि मैं अपने गुरुदेव के धर्मोपदेश के शब्द सुनना चाहता हूँ। हर व्यक्ति ऊँचा मकान, मीठे पकवान, नौकर-चाकर चाहता है। शांति तो कोई व्यक्ति चाहता ही नहीं है, जब चाहते ही नहीं हो तो दुकानदार पागल है क्या? दुकानदार के सामने तुम खड़े हो जाओ और कहो शक्कर चाहिए तो वह तुम्हें घी कैसे देगा, तुम जो माँगोगे वही तो तुम्हें मिलेगा।

तो पहली बात तो ये है हमने अभी तक शांति चाही ही नहीं। यदि अन्तरात्मा से चाही होती तो अभी तक शांति मिल गयी होती, दूसरी बात शांति तब मिलती है जब केवल शांति और शांति ही चाहते हैं। वह शांति अपने साथ सौत को पसंद नहीं करती किसी भी कीमत पर। शांति तो तीर्थंकर की तरह से इकलौती है। तीर्थंकर के माता-पिता सिर्फ एक संतान को जन्म देते हैं उनके भाई नहीं होता, कोई बहिन नहीं होती, ऐसे ही शांति इकलौती है, वह अपने साथ सहोदर को स्वीकार नहीं करती है। शांति एक ऐसी मुक्ति सुन्दरी है जिसने जीवन में कभी सौत को स्वीकार नहीं किया। केवल ज्ञान के साथ में दूसरा और कोई ज्ञान टिक नहीं सकता, अन्य ज्ञान टिकते हैं तब तक

केवलज्ञान टिक नहीं सकता, केवलज्ञान हो नहीं सकता। तो शांति की दूसरी शर्त यह है कि वह शांति सिर्फ शांति चाहती है और दूसरी चीज नहीं चाहती, किन्तु आपको तो और दूसरी भी चीज चाहिए न। यदि आप कहीं गये और पानी भी नहीं मिला तो आप कहेंगे-लो उन्होंने तो पानी तक की नहीं पूछी। यदि पीने को मिला तो कहेंगे ''अकेला पानी पीया जाता है क्या? दो बर्फी रख देते साथ में'' और बर्फी मिली तो, ''नमकीन नहीं है क्या घर में?'' नमकीन भी आ गई। ''अरे! चाय तो ले आता'' और चाय भी पिला दी तो ''अरे! इतनी गरीबी आ गई दो रोटी खिला देता तो क्या बिगड़ जाता'', दो रोटी भी मिल गयी तो उसकी इच्छायें, मान, सम्मान की आकांक्षायें बढ़ती जाती हैं, एक से काम चलता ही नहीं।

कभी व्यक्ति एक इच्छा के साथ जी ही नहीं सकता, उसे एक साथ कई इच्छायें लेकर चलनी पड़ती हैं। मैं आपको practically एक बात बताता हूँ वह सही है। हम आपसे पूछें अभी आप क्या सोच रहे हो? तो एक बात ही कहोगे। मैं आपके अंदर की बात कहता हूँ जिस समय तुम एक जगह मन लगाकर काम कर रहे हो उस समय तुम्हारे अवचेतन मन में कई विचार चल रहे हैं। अभी भी आप मेरी बात तो सुन रहे हैं, किन्तु पीछे और भी बहुत सारी बातें चल रही हैं, ये बिल्कुल सत्य बात है। ये संसारी प्राणी है, ये एक इच्छा को प्राप्त करके दूसरी इच्छा को प्राप्त करना चाहता है। एक-दूसरे प्रकार का उदाहरण आपको दे रहा हूँ किन्तु उसका दूसरा अर्थ नहीं लगा लेना, उससे गलत अर्थ ग्रहण नहीं करना तथ्य ग्रहण करना, समझना मैं क्या कहना चाहता हूँ-कॉलेज में लड़के-लड़की साथ-साथ पढ़ते हैं, संयोग की बात एक मनचले लड़के की दृष्टि एक लड़की पर पड़ गयी, वह लड़की बहुत सुन्दर थी एक दिन लड़के ने उसका रास्ता रोका और कहा मैं तुझे बहुत चाहता हूँ, लड़की कुछ नहीं बोली मौनपूर्वक चली गई, लड़के ने दूसरी बार फिर रोका, लड़की ने कुछ कहना चाहा उसके पहले ही वह अपने मन की बात उगल गया बोला बस मेरी दृष्टि में

संसार में तुझसे सुन्दर कोई स्त्री है ही नहीं, तू नहीं मिली तो प्राण दे दूँगा और भी जो कुछ कहना था सो सब कह दिया, वह सब जो युवा मूर्खचन्द्र कहते हैं। जब उसकी बात पूरी हो गई तब लड़की बोली देखो ऐसे चाहने से कुछ नहीं होता है समर्पण भी कोई चीज होती है और जिसका जिसके प्रति समर्पण होता है उसे वह चीज मिल जाती है।

लड़का कहता है ''मैं तेरे लिए प्राण देने के लिए तैयार हूँ, मरने को तैयार हूँ, लड़की ने कहा ''मुझे मरने वाला न चाहिए, मुझे तो जीने वाला चाहिए, क्या पूर्ण समर्पित हो, लड़के ने कहा ''संसार में तुम्हारे सिवाय ऐसा कोई नहीं जिसके लिए मैं प्राणपन से समर्पित हूँ'', लड़की ने कहा कि ''तुमने थोड़ी जल्दबाजी कर दी।'' बोला ''क्यों??'' वह बोली ''तुमने मेरी छोटी बहिन को नहीं देखा, एक बार तुम उसको देख लेते वह बहुत सुन्दर है अगर मिले होते तो पागल हो गये होते'' और चर्चा करते-करते तुरन्त बोली ''अरे! लो वह पीछे से आ रही है''। उस लड़के ने जैसे ही निगाह पीछे की, लड़की ने उसके गाल पर एक तमाचा मारा कहा ''बत्तमीज समर्पण इसे कहते हैं यदि तेरा समर्पण मेरे प्रति था तो फिर अभी तेरी निगाह पीछे क्यों गई। यदि पीछे की ओर दृष्टि गई तो समर्पण मेरे प्रति नहीं है।'' जिसका समर्पण जिसके प्रति होता है उसके लिए और तो सब बेकार है। बुन्देल खण्ड में एक कहावत है **''मन लगा गधी से तो परी क्या चीज है''** समर्पण वह कहलाता है जिसके लिए उससे बढ़कर और कोई न हो। महानुभाव! दो इच्छायें एक साथ नहीं चल सकती।

एक महात्मा के पास एक बहुत धनी सेठ गया, कहने लगा ''महात्मा जी! मैं दर-दर भटक करके आ गया किन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली'', महात्मा जी ने कहा ''यदि शांति दर-दर भटकने से मिल जाती तो आज तक जो लोग दर-दर भटके थे उन्हें शांति मिल गई होती किन्तु उन्हें स्वयं शांति नहीं मिली तो उनके दर पर तुम्हें शांति कैसे मिल जायेगी? ''महात्मा जी! आपने बिल्कुल ठीक कहा, मुझे भी शांति

नहीं मिली अब बताओ मुझे शांति कैसे मिलेगी''? महात्मा जी ने कहा ''अब तुम्हें दर-दर भटकने की आवश्यकता नहीं तुम्हारे पास बहुत शांति है। सिर्फ और सिर्फ शांति को चाहो तो वह तुम्हें मिल जायेगी।'' महात्मा जी बोले ''सेठ जी! आप अकेले शांति को नहीं चाहते आप तो शांति के साथ-साथ यह भी चाहते हो कि व्यापार में घाटा न लग जाये, इसके साथ आपके बाल-बच्चे आपकी आज्ञा में रहें, आप यह भी चाहते हो कि आपकी पत्नी आपको चाहती रहे, आप यह भी चाहते हो आपका शरीर भी स्वस्थ रहे। हाँ सो तो है, जब ऐसा है तब अकेले शांति कहाँ चाह रहे हो, इन सबके साथ जीना चाहते हो तो शांति कहाँ से आयेगी। महात्मा जी इससे क्या फर्क पड़ता है, फर्क यह पड़ता है कि शांति प्राप्ति की इच्छा तीव्रता से युक्त नहीं हो सकती।

एक संकल्प होता है तो सुदृढ़ होता है। दो संकल्प लेकर चलोगे तो एक भी पूरा नहीं हो पाता है। नहीं महात्मा जी ऐसी कोई बात नहीं है हम एक साथ चार-चार काम कर लेते हैं। हाँ सेठ जी! संसार के और काम तो एक साथ हो सकते हैं, किन्तु ये काम नहीं हो सकता। शांति पाने के लिए वह तलवार चाहिए जो तलवार को काट सके, अपनी ही आँखों से अपने को देख सको, अपने ही कंधों पर खड़े हो सको। सेठ की समझ में अब भी नहीं आया। महात्मा जी ने कहा कि चल मैं तुझे प्रयोग करके बताता हूँ। महात्मा एक मटका लेकर एक नदी के किनारे पहुँचा, कपड़े उतारे और नदी में उतरा नहाने के लिए और मटका भरकर नदी के किनारे रख दिया, महात्मा ने कहा कि आजा तू भी मेरे साथ स्नान कर ले, सेठ बोला नहीं-नहीं, मुझे डर लगता है, महात्मा ने कहा-डरने जैसी कोई बात नहीं है, कोई ज्यादा गहरा पानी नहीं है। सेठ भी उतर गया पानी में, महात्मा ने उसका हाथ पकड़ा और खींच लिया।

महात्मा अच्छा मस्त था, उसने सेठ की पकड़ी गर्दन और पानी में डुबा दिया। वह सेठ झटपटाने लगा सोचने लगा महात्मा है कि हत्यारा

है, भगवान् कैसे इससे छूटूँ? उसने पूरी शक्ति लगाई और बाहर निकल आया। महात्मा ने पूछा-भाई क्या बात है? बात क्या तुम तो हत्यारे हो, मैं तो तुम्हें महात्मा समझता था, तुम तो मेरे प्राण लेने पर तुले हो। महात्मा बोला अच्छा एक बात बताओ जब मैंने तुम्हारी गर्दन पकड़कर पानी में पूरी डुबा दी थी तो तुम क्या चाहते थे? गर्दन छुड़ाकर पानी से छूटना चाहता था, सही-सही बताना उस वक्त तू भगवान् से क्या माँग रहा था? स्त्री मेरी आज्ञाकारी हो या पुत्र आज्ञाकारी हो, मुझे रोग न हो, व्यापार में घाटा न लगे, क्या माँग रहा था? वह बोला एक ही बात सोच रहा था कि हे भगवान्! इस व्यक्ति से मुझे छुड़ा ले। एक ही बात माँग रहा था तभी तो तू छूट गया। ऐसी ही तीव्र लालसा मन में जब शांति को प्राप्त करने की होगी तब कोई तुझे शांति से वंचित नहीं कर सकता।

महानुभाव! शांति दो के स्थान पर अकेली ही चलती है। जो जितनी अच्छी चीज होती है वह अकेली ही रहती है। सूर्य कभी अपने वैभव को साथ लेकर नहीं चलता, चन्द्रमा अकेला ही चलता है, शेर अकेला ही चलता है, शांति संसार की अन्य चीजों को साथ लेकर नहीं चलती है। महानुभाव! शांति क्यों नहीं मिल रही, आज का टॉपिक कितने शब्द का है? तीन I Want Peace आप चाहते क्या हैं? पीस। उसके पहले क्या है वॉन्ट और इसके पहले I (आई) यानि मैं। अब ये सोचो आप यहाँ इस हाल में बैठे हो और आपको बाहर Road पर जाना है पहले आपको हॉल फिर बाहर का आँगन Cross करना पड़ेगा न। दरअसल में ये व्यक्ति 'I' के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। मैं जैन, मैं अध्यक्ष, मैं मंत्री, मैं सेठ,मैं ये, मैं वो, बस मैं-मैं। ये मैं एक ऐसी चीज है जो व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देती। मैं की बेड़ी इतनी जबरदस्त बेड़ी है कि इसको तोड़ना बड़ा कठिन है, लोहे की सांकलों को तोड़ा जा सकता है किंतु, 'मैं' की बेड़ी को नहीं तोड़ा जा सकता। जब तक तुम, 'मैं' की बेड़ी से जकड़े रहोगे तब तक तुम्हें मुक्त आकाश के

दर्शन न हो सकेंगे। 'मैं' की बेड़ी में जकड़ा व्यक्ति 'वॉन्ट' की इच्छा की जेल में कैद है उसे शांति के दर्शन कैसे हो सकेंगे।

व्यक्ति बस यही कहता है मैं ये हूँ, तू जानता नहीं मैं कौन हूँ तो अगला कोई कह ही देता है। हाँ हाँ हमें पता है तू कौन है, पर शायद तुझे नहीं पता कि तू कौन है?

एक वृद्ध पुरुष यात्रा करने के लिए चढ़ा उसके पास अंगूरों की पोटली थी, एक युवा लड़का आया और अंगूरों की पोटली पर बैठ गया। बाबा ने कहा–बेटा उठो यहाँ से। वह बोला–बाबा जानता नहीं मैं कौन हूँ। बेचारा बूढ़ा व्यक्ति शांत हो गया, थोड़ी देर बाद कुछ कहने का प्रयास किया, वह फिर अकड़कर बोला जानते नहीं मैं कौन हूँ, तीसरी बार पुनः यही कहा, बूढ़े व्यक्ति ने कहा–हाँ जानता हूँ, तेरे सिर पर यौवन का उन्माद–भूत चढ़ा है, तू पागल है, मूर्ख है तू मेरी अंगूरों की पोटली पर बैठ गया है। तुझे इतना नहीं दिखाई देता है, कोई आकर तुझे दो थप्पड़ मार देगा रोता फिरेगा तुझे मालूम पड़ जायेगा तू कौन है। यह 'मैं' सबसे बड़ा अहंकार है।

देहोऽहं, कर्मरूपोऽहं मनुष्योऽहं कृशोऽकृशा।।
गौरोऽहं श्यामवर्णोऽहमद्विजोऽहं द्विजोऽयता।।
अविद्वानप्यहं विद्वान् निर्धनो धनवानहम्।
इत्यादि चिन्तनं पुंसामहंकारो निरुच्यते।।

मैं देहरूप हूँ, कर्मरूप हूँ, दुर्बल हूँ, स्थूल हूँ, गौरवर्ण हूँ, श्याम वर्ण हूँ, द्विजोतर हूँ, द्विज हूँ, अविद्वान् हूँ, विद्वान् हूँ और धनवान् हूँ, इस प्रकार पुरुषों का चिंतन अहंकार कहलाता है।

इंग्लैण्ड की रानी विक्टोरिया किसी कार्यक्रम में से रात को देर से लौटी, उनके श्रीमान् जी महल में थे उन्होंने आवाज लगाई ''दरवाजा खोलो'', श्रीमान् जी को थोड़ा अच्छा नहीं लगा कि देखो ये मुझसे सीधे आवेश में बात कर रही है, पूछा कौन? वह बोली ''इंग्लैण्ड की

रानी विक्टोरिया'', वह दरवाजे तक गया और आकर पुनः लौट गया और सो गया'' खड़ी रह बाहर, इंग्लैण्ड की महारानी है न, मुझे न चाहिए'', दोबारा दरवाजा बजाकर बोली ''आपकी पत्नी'', फिर वह गया लगा थोड़ा अहंकार कम हो गया है, ''मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ समझे। वह बोला ''अच्छा अभी भी अधिकार की बात कर रही है, मैं नहीं खोलूँगा, बेचारी घंटे-दो घंटे खड़ी रही फिर कहती है ''मैं आपके चरणों की दासी चरणों की धूल हूँ'', उसने तुरंत दरवाजा खोल दिया।

महानुभाव! अहंकार भी किसका करना-

जो रहा किसी दिन बादशाह, वह पथ का आज भिखारी है।
जो रोटी को मुहताज रहा, वह बना राज दरबारी है॥

अहंकार के साथ व्यक्ति कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता। अर्थ यह है कि अहंकार के पर्वत पर चढ़े रहकर के कोई भी व्यक्ति जमीन पर पड़े हुए शक्कर के दाने नहीं उठा सकता। हाथी ने कभी शक्कर के दाने उठाये? यदि तुम्हें कुछ रत्नादि चाहिए तो समुद्र के तल में जाना पड़ेगा, समुद्र के किनारे घूमने से समुद्र के भीतर पड़े रत्नों को प्राप्त नहीं किया जा सकता, उसके लिए तो उसको डुबकी लगानी पड़ती है, अंदर तक जाना पड़ेगा। कोई व्यक्ति सिर्फ सतह पर तैर रहा है वह सिर्फ तैरता ही रहेगा, वह भीतर डुबकी लगाता नहीं दिखाई देगा और डुबकी नहीं लगायेगा तो मोती पकड़ में नहीं आ पायेंगे।

महानुभाव! कहने का आशय यह है कि हम भी ऊपर ही ऊपर जाते हैं, हमारे अंदर भी एक सागर है, रत्नों का सागर है हम समुद्र के किनारे-किनारे चक्कर लगा रहे हैं और किनारे-किनारे दौड़ लगाने से भी तुम्हारी मुट्ठी में कोई रत्न नहीं आ पायेगा। जब रत्न हमारी मुट्ठी में आ जायेंगे तब हम दुनिया की दृष्टि से ओझल हो जायेंगे, अदृश्य हो जायेंगे, अगोचर हो जायेंगे। महानुभाव! पहली शर्त समझनी है कि अहंकार के पर्वत पर खड़े होकर हम अपनी आत्मा के किसी भी गुण

को, वैभव को प्राप्त नहीं कर सकते, आज नही तो कल नीचे उतरना ही पड़ेगा। अहंकार कभी किसी को आगे नहीं बढ़ने देता। मैं-मैं बकरी करती है तो क्या पाती है-

बकरी मैं-मैं करत है अपनी खाल खिंचाय।
तूती तू तू करत है, रही मजे से गाय॥

जो व्यक्ति मैं-मैं करता है ताको कौन हवाल? बकरी मैं-मैं करती है और जब तांत बनती है रूई धुन में आवाज आती है तुई है-तुई है। जो इंसान मैं-मैं करता है वह आज नहीं तो कल पतन को प्राप्त करता है, ''मैं' पतन का बीज है। ''मैं'' जिसके भी मन में आ गया चाहे रावण के, चाहे कंस के, चाहे दुर्योधन के उसकी 'मैं' टिकी नहीं, नष्ट हो गई, इस ''मैं'' को छोड़कर के मय हो जाओ। चेतनामय, चिन्मय, चित्मय हो जाओ। जब स्वयंमय हो जाओगे तब नि:संदेह तुमसे तुम्हारी शांति को कोई छीन नहीं सकता। संक्षेप में दूसरी बात है Want (चाहना, इच्छा) यदि तुमने वैभव छोड़ दिया और मन में कोई इच्छा शेष रही, तो फिर तुम बाहर नहीं पहुँच सकते। ''मैं'' के दरवाजे को खोलकर बाहर पहुँच गये तो 'मैं' को छोड़ने वाले व्यक्ति भी मन में कोई इच्छा रखते हैं। साधु संत भी जब व्यवहार धर्म का पालन करते हैं, सविकल्प अवस्था में रहते हैं तब वे भी इच्छा रखते हैं और जब निश्चय में जाते हैं तब **'निरवांछ तपै शिव पद निहार'** जब शिव पद की भी इच्छा नहीं होगी, तभी शिवपद की प्राप्ति होगी।

चाह गयी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिये वे शाहन के शाह॥

लोक में जिस व्यक्ति की इच्छा जितनी कम होती जाती है वह उतना ही गुरु यानि गुणों में भारी होता चला जाता है। प्रश्नोत्तर रत्नमालिका में आचार्य अमोघवर्ष स्वामी कहते हैं 'एवं किं लाघवं याञ्चा' जो व्यक्ति याचना करता है वह लघु है। जो ग्रहण करता है

वह समुद्र की तरह से नीचा हो जाता है और त्याग करने वाला मेघ के समान ऊँचा उठता चला जाता है। और कहा भी है-**''स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः पुनः''** त्याग करने वाले की प्रतिष्ठा, यश आदि बढता है और याचना करने वाले का साथ सब छोड़कर चले जाते हैं।

देहीति वचनं श्रुत्वा देहस्थाः पंचदेवताः।
नश्यन्ति तत्क्षणादेव श्री-ह्री-धी-धृति-कीर्तयः॥

'देहि-देआ' यह वचन सुनकर शरीर में रहने वाली श्री, ह्री, धी, धृति व कीर्ति नामक पाँच देवियाँ चली जाती हैं। कहने का आशय यह है कि याचना करने से मनुष्य की शोभा, लज्जा, बुद्धि, धैर्य और कीर्ति नष्ट हो जाती है। जो व्यक्ति किसी से कुछ नहीं चाहता वह ही वास्तव में गुरु है, गुणों से युक्त है।

तावद् गुणा गुरुत्वञ्च, यावन्नार्थयते पुमान्।
अर्थी चेत् पुरुषो जात, क्व गुणाः क्व च गौरवं॥

''व्यक्ति में गुण और गुरुत्व तभी तक रहते हैं जब तक पुरुष किसी से कुछ चाहता नहीं। वरना इच्छाओं से युक्त पुरुष के गुण और गुरुत्व है कहाँ?'' अरे! चाहने से कुछ नहीं मिलेगा।

'मोक्ष चाहने से मोक्ष नहीं मिलेगा', हमारे चाहने मात्र से हम निर्विकल्प न हो सकेंगे उसके लिए एक ही स्थिति है विकल्पों को छोड़ दो, निर्विकल्पों का भी विकल्प छोड़ दो।

तुम लोग जिंदगी भर शांति के लिए अशांत रहते हो, सुख पाने के लिए दुःखी रहते हो, विकल्पों को शांत करने के लिए विकल्पों में झूलते रहते हो और एक हाथ से खाने के लिए जिंदगी भर दोनों हाथों से कमाते रहते हो, तुमसे अच्छे तो हम हैं एक हाथ से आशीर्वाद दिया और दोनों हाथों से खाते हैं। महानुभाव! कहने का अभिप्राय ये है कि जब तक इच्छा मन में शेष रहेगी वह चीज प्राप्त न हो सकेगी

जिसको कि तुम प्राप्त करना चाहते हो। शांति कभी भी माँगने से नहीं मिलती, शांति तो स्वत:प्राप्त होती है। किसी चिकित्सक के पास जाकर अपने मुँह का दाँत माँगो, चाहे 100 रूपये दो चाहे 1000 डॉक्टर क्या कहेगा? भईया तेरे मुँह का दाँत मेरे पास कहाँ से आया? जो तेरे पास है वह मैं तुझे कभी दे नही सकता। ऐसे ही इस संसार में हम भिखारी की तरह घूम रहे हैं शांति माँग रहे हैं जो कि हमारे पास है।

एक सेठ शांति की तलाश में महात्मा के पास पहुँचा। महात्मा ने कहा मेरे पास उपाय है, एक महात्मा और है उस महात्मा को तुम सीरा (आटा) दे आओ, सेठ कंजूस था सोचने लगा ''लो आते ही खर्चा बता दिया'', वह चुटकी भर आटा लेकर गया उन महात्मा के पास, बोला ''महात्मा जी! मैं आपको सीरा देने आया हूँ'', बोले वापस ले जाओ क्योंकि आज का तो हमारे पास है। सेठ बोला ''कल के लिए'', महात्मा- कल जब आयेगा तब देखेगें, कल जीवित रहेंगे या मरेंगे। आज के लिए कल की चिंता क्यों?'' सेठ ने कहा-ये तो बड़ा ऊँचा महात्मा है, इसके पास अवश्य मेरी शंका का समाधान मिल जायेगा, उसने कहा महात्मा जी आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ-''मैं शांति चाहता हूँ उसकी खोज में भटक रहा हूँ।'' उन्होंने कहा ''इस समुद्र में एक मगरेश्वर नाम के महात्मा जी हैं, मगर के रूप में रहते हैं जब बुलाओ तो आते हैं'' उनसे समाधान लेकर आना। वह समुद्र किनारे गया महात्मा जी भी उसके साथ गए, बोला ''हे मगरेश्वर महाराज! पधारो आप!'' दो-चार आवाज लगाई, मगर मुख ऊपर करता हुआ बाहर आया, किनारे तक पहुँचा। उससे कहा मुझे आत्म शांति चाहिए, मगरेश्वर ने कहा ''मेरा गला सूख रहा है मेरे प्राण कंठ में अटके हुए हैं, तू कहीं से मेरे लिए एक गिलास पानी ले आ, तो मैं कुछ बोल दूँ'', वह सेठ बोला ''धिक्कार! कितना मूर्ख है ये, एक गिलास पानी मुझसे माँग रहा है जब कि स्वयं अथाह समुद्र में डूबा हुआ है''

मगरेश्वर ने कहा ''इतनी बुद्धि तेरे पास है तो तू मेरे पास क्यों आया? तेरे पास भी तो अथाह शांति है, तेरी आत्मा में भी तो अथाह शांति का भण्डार भरा पड़ा हुआ है और तू मुझसे शांति माँगने आया है?''

महानुभाव! सत्यता तो यही है कि शांति हमारे अंतरंग में है वह चाहने से नहीं मिलेगी, शांति को खोजो मत, शांति को पाने के लिए अपने अंदर खोदो, खो-दो जो तुम्हारे पास है। शांति को पाने के लिए सब कुछ खो दो और अंतरंग में खोजो, जो विकल्पों की चट्टान अंतरंग में तुम्हारी आत्मा पर चढ़ी हुई है उन्हें खोदो, खोदकर फैंकते जाओ तब शांति मिलेगी। एक महिला थाली में रखकर गेहूँ बीन रही है कंकर-पत्थर भी पड़े हुए हैं। तो वह क्या करती है सब चीज फेंकती जाती है केवल वह चीज उठा लेती है जो उसे चाहिए, ऐसे ही फालतू-फालतू चीज को फेंकते जाओ और जो चीज बचेगी वह शांति कहलायेगी।

ऐसी शांति आप सभी को प्राप्त हो, मैं आप सभी के प्रति ऐसी मंगल भावना भाता हूँ। इसी मंगल भावना के साथ आप सभी लोगों को बहुत-बहुत आशीर्वाद।

''जैनम् जयतु शासनम्''

घर को स्वर्ग कैसे बनायें

महानुभाव! आज का विषय जो आप सुनना चाह रहे हैं ''अपने घर को स्वर्ग कैसे बनायें?'' घर को स्वर्ग बनाने के लिए कुछ करना पड़ता है। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है और खोने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता। खोना एक नैसर्गिक क्रिया है और बनाना पुरुषार्थगम्य है। जब भी कोई चीज बनायी जाती है उसके लिए मेहनत करनी पड़ती है। किसी नगर में एक बहुत पुरानी धर्मशाला थी, चातुर्मास में उसमें पानी टपकता था। उसकी छत इतनी नीची थी कि यदि कोई लम्बा आदमी आ जाए तो उसका सिर छत से टकराता था। दरवाजे भी बहुत छोटे-छोटे थे। आवश्यकता से अधिक उसमें खम्भे थे, नीचे का फर्श ऐसा था कि व्यक्ति सावधानी से चले तो भी ठोकर खाकर गिर जाए। उस धर्मशाला से लाभ कम और हानि ज्यादा थी। गाँव के लोगों ने मीटिंग बुलाई कि अब तो इस धर्मशाला को तोड़कर नई धर्मशाला बनानी चाहिए। जब मीटिंग में यह प्रस्ताव रखा तो कुछ लोग खड़े हो गए, बोले ''कोई हाथ तो लगा के देखे हम इस धर्मशाला को नहीं तोड़ने देंगे। यह हमारी पूर्वजों की बनाई धर्मशाला है, किसी का इतना साहस नहीं जो इसे तोड़ दे। धर्मशाला बनानी है तो दूसरी नयी बनाओ या इसके ऊपर बनाओ''। लोगों ने बहुत समझाने का प्रयास किया, कहा 'भाई! देखो ये पुरानी है इसको तोड़ देना ही ठीक है।''

परन्तु लोग फिर खड़े हो गये बोले ''अगर बनाना चाहते हो तो इसके ऊपर बना दो।'' लोगों ने पुनः समझाने का प्रयास किया कि ''जब नींव कमजोर है तो ऊपर बनाने पर भी वह टूट जायेगा। सब मेहनत बेकार जायेगी।'' कुछ लोगों ने फिर कहा ''यह तोड़कर ही बनाना चाहते हो तो कुछ चीजें जैसे पाषाण की देहरी, नक्काशी वाला पत्थर और भी कई चीजें हैं, उन्हें ज्यों का त्यों ही लगाना पड़ेगा। पहले लिखित प्रस्ताव में यह लिखो तब हम तोड़ने की स्वीकृति देते हैं''

फिर समझाने का प्रयास किया कि ''देखो नई धर्मशाला में पुरानी चीज ही ज्यों की त्यों लगा दी तो नई धर्मशाला बनाने का औचित्य ही क्या रहा? फिर वह पुरानी चीजों से नई चीज भी पुरानी ही कहलायेगी। यदि कोई व्यक्ति पुरानी खाट से नई खाट बना दे तो खाट नयी हो गई क्या? वह पुरानी ही है जैसे ही कोई बैठेगा टूट जायेगी। यदि कोई पुरानी सड़ी-गली लकड़ी की कुर्सी बनवाना चाहे, किवाड़ बनवाना चाहे तो क्या वे टिकेंगे? एक बार धक्के से टूट जायेंगे। यदि नई चीज बनानी है तो नया सामान भी लाना होगा।''

किन्तु बहुत कम लोग ऐसे थे जो तैयार थे कि पुरानी धर्मशाला की एक-एक ईंट यहाँ तक कि नींव तक की ईंट निकालकर बाहर फेंक देना चाहिए और नया आसाम बनाकर के पुनः बनाना चाहिए। इस संबंध में बहुत कम लोग अपनी राय दे रहे थे। अधिकांश लोग ये कह रहे थे इसको छूना नहीं है। हाथ लगाकर देखो, कौन तोड़ता है इसे। कोई कहता है इसके ऊपर बना लो, कोई कहता है इसी सामान से बनाओ।

महानुभाव! हमें लगता है अपने जीवन के निर्माण के संबंध में भी कुछ लोग इस प्रकार के हैं कि अपनी पुरानी आदतों को छोड़ना नहीं चाहते पर अपना अच्छा भविष्य बनाना चाहते हैं। कुछ ऐसे हैं कि पुरानी आदतें ज्यों कि त्यों बनी रहें, नई अच्छी आदतें ग्रहण कर लें। विरले ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपनी अनादिकालीन क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, स्पर्शनइन्द्रिय, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण के विषय, इन सब सम्पत्ति को, जो सम्पत्ति के रूप में इसे मान बैठे हैं, उसे छोड़ने के लिए तैयार हो जायें और अहिंसादि महाव्रत, प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि गुण मैत्री, प्रमोद, माध्यस्थ, कारुण्य भावनाओं को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जायें। सत्यता यही है कि पुराने का मूलतः त्याग न किया जाये तो नूतन भी पुराना हो जाता है।

किसी महिला ने छांछ के मटके में अच्छा दूध रख दिया और थोड़ी देर बाद देखा तो वह दूध, दूध नहीं रहा दही बन गया। क्यों? उसमें तो जामन भी नहीं डाला, ऐसा इसीलिए क्योंकि मटका तो छांछ का था उसमें डालने की क्या आवश्यकता है? उसमें तो छांछ के संस्कार पहले से हैं, यदि वह मटका कोरा होता तो दूध नहीं जमता, या उसे कई बार साफ कर लिया होता तो भी नहीं जमता, या गर्म पानी से साफ करने पर जब मटके में उसका अंश भी नहीं रहता तो संभावना थी कि दूध सही बना रहता। जिस पात्र में नींबू का रस रखा हो उसे खाली कर दूध भरेंगे तो वह फटेगा ही। ऐसे ही हमें अपने जीवन का निर्वाह करने के लिए पहले पुरानी आदतों को, पुराने संस्कारों को, बुराईयों को एकदम त्यागना ही होगा, उन्हें त्यागे बिना किसी भी कीमत पर हम नूतन अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकते।

कोई व्यक्ति चाहे कि मैं अपने फटे-पुराने कपड़े उतारे बिना ऊपर से नये कपड़े पहन लूँ। क्या ऐसा होगा? फटे-बदबूदार कपड़ों के ऊपर अच्छे से अच्छा सूट पहनने से अच्छा थोड़े ही लगेगा। यदि कहीं गंदगी पड़ी है उसके ऊपर से फूल डाल दिये, इत्र छिड़क दिया तो क्या वह गंदगी नहीं कहलायेगी। प्रायःकर के हमारे आपके साथ ऐसा ही होता है, हम मूलतः गंदगी को छोड़ना नहीं चाहते, गंदगी को ऊपर से साफ करना चाहते हैं। जब तक बेशर्म की जड़ उखाड़कर न फेंकी जाए तब तक वह पेड़ बार-बार काटते रहो, कितनी ही बार काट लो ज्यों का त्यों उगता रहेगा। बुराई भी बेशर्म के पेड़ की तरह से होती है, तोड़ते जाओ, काटते जाओ नष्ट नहीं होगी। चने को खोदते जाओ बढ़ता जाता है, कई पेड़ ऐसे होते हैं जिनकी शाखा काटते जाओ वे बढ़ते चले जाते हैं किन्तु मूलतः खोदने पर ही नष्ट होते हैं, चाणक्य की तरह से यदि उनके पैर में काँटा चुभ गया तो केवल उसे खोदा ही नहीं, खोद करके उसमें छांछ नमक भी डाल दिया ताकि जड़ तक गल जाये। हमें भी हर एक बुराई की जड़ तक को गलाना है, खोदकर

के नहीं बैठना है, खोदकर अकेले बैठेंगे तो संभावना है दोबारा पुनः बुराई चुभ जाये, संगति में पहुँचें और बुराई पुनः मिल जाये।

हम अपने घर को स्वर्ग कैसे बनायें, यदि बालू पर कोई रेत की दीवार खड़ी की जाये तो मकान न बन सकेगा, बिना नींव खोदे बालू पर यदि ईंटों से भी दीवार चिनेंगे तो वह टिकेगी नहीं गिर जायेगी, यदि महल अच्छा बनाना है तो बालू को अलग करके नीचे खोदना पड़ेगा। जहाँ तक मिट्टी पक्की न आ जाये चट्टान आदि न आये, तब तक खोदना चाहिए, बालू-बालू निकलेगी तो वहाँ महल टिक नहीं पायेगा। हमें अपने घर को स्वर्ग बनाना है तो स्वर्ग की दीवार नरक में जाकर खड़ी नहीं करना है, यदि स्वर्ग की दीवार नरक में जाकर खड़ी कर दी जायेगी तो वह भी नरक हो जायेगी। नरक की दीवार पर स्वर्ग नहीं बनता है। झोंपड़ी की दीवार पर महल खड़ा नहीं किया जा सकता। एक टेक गाढ़ने के लिए आपने छप्पर बनाया और जमीन पर टेक गाढ़ दी तो उस टेक पर क्या महल टिक जायेगा? ऐसे ही जीवन को जितना उत्कृष्ट, उच्चतम, श्रेष्ठ बनाना है तो उसकी नींव भी बहुत अच्छी होना चाहिए, उसमें पड़े हुए पत्थर, काँटे, गंदगी ये सब निकालकर बाहर करो, निकालकर बाहर करोगे तो अच्छा रहेगा अन्यथा श्मशान में जाकर के महल बनाओ तो वहाँ पर बदबू आयेगी, भूतों का डेरा दिखाई देगा, जहाँ पर किसी गड्ढे में गंदगी डाली जाती थी वहाँ पर जाकर मंदिर बनाओगे तब भी उसकी वर्गणायें सैकड़ों सालों तक बदबू मारती रहेंगी।

अतः सब गंदगी को बाहर निकालना जरूरी है। दरअसल में अभी हमारा जीवन जो नरक बना हुआ है तो पहले उन बातों को जीवन से निकाल कर बाहर फेंकना होगा जिनके कारण हमारा जीवन नरक तुल्य बना हुआ है। नरक किसे कहते हैं- **''न रति भावः इति नारका''** जहाँ रति भाव प्रेम का भाव नहीं है वह नारकी हैं। जहाँ पर नारकी जीव रहते हैं वह नरक है। वैसे नरक कोई नरक नहीं है। जहाँ पर

नारकी जीव हैं या नारकी जैसा जीव रहता है वो नरक ही कहलायेगा। चाहे कहीं भी हो नरक से आशय ऐसा नहीं कि नीचे अधोलोक वाले बिल हों। नरक मध्यलोक में भी हो सकता है, नरक और कहीं भी हो सकता है।

एक बार एक नेता से किसी देव ने आकर कहा ''मैं तुम्हारी देश भक्ति से प्रभावित हूँ और तुम्हें स्वर्ग में लेकर जाना चाहता हूँ।'' नेता तैयार हो गया कि तुमने बड़ी कृपा की, इतने में और नेता आ गये वे बोले ''नहीं, ये नहीं हो सकता, इस अकेले को हम स्वर्ग नहीं जाने देंगे, तुम ये बताओ कि तुम्हें कितना टैक्स लेना है हम उतना ही पैसा देंगे, दान कहोगे दान करेंगे पर स्वर्ग में तो हम भी जायेंगे'', बेचारा देव घबरा गया कहने लगा ''ठीक है, मैं तुम सबको स्वर्ग ले जाता हूँ, इतने में पहला वाला व्यक्ति बोला ''भईया मुझे क्षमा करो, मुझे तुम नरक में भेज दो'', ''पूछा क्यों, ऐसी क्या बात हो गई'' वह बोला ''जहाँ ये भ्रष्ट नेता पहुँच जायेंगे वह स्वर्ग भी नरक बन जायेगा, मैं ऐसे स्वर्ग में नहीं जाना चाहता।

नरक-स्वर्ग क्या है? अपने घर को स्वर्ग कैसे बनायें? घर का आशय क्या है? घर का आशय चार दीवारी है क्या? उसे तो मकान कहते हैं, घर तो वह है जहाँ गृहिणी रहती है। जब आप कहीं जाते हैं आपसे पूछा जाता है-कि ''आप अकेले आये हैं या पूरा घर?'' नहीं, ''पूरा घर आया है'' तो क्या घर को उठाकर ले आये, नहीं! गृहिणी साथ आयी हो तो पूरा घर कहलाता है। जिस घर में स्त्री न हो सिर्फ पुरुष ही पुरुष हों तो वह घर-घर नहीं लगता है। घर तो तभी बनता है जब घर में गृहिणी आ जावे। पैसों से तो मकान बनाये जाते हैं पैसों से घर नहीं बनाये जाते हैं। घर तो प्रेम से बनते हैं जिसके साथ तुमने प्रेम स्थापित किया है प्रेम के साथ संसार की वृद्धि हुई है जिससे तुम्हारा घन बन गया, फिर तुम गृहस्थ हो गये, घर में लीन हो गये। घर में गृहस्थी में लीन होने का आशय है व्यक्ति ईट की दीवार में इतना

लीन नहीं होगा जितना गृहिणी में लीन होता है, आसक्ति गृहिणी के प्रति होती है यदि गृहिणी साथ में हो तो रामचन्द्र जी भी जंगल चले गये और गृहिणी साथ में नहीं तो स्वर्ग में भी अच्छा नहीं लगता। घर को स्वर्ग बनाने के लिए पहले हमें ऐसी बातों को निकालकर फेंकना होगा जिन बातों के कारण घर नरक बना हुआ है।

तो पहली बात है **अरति भाव**। नारकी जीवों में आपस में प्रेम नहीं होता है, जिस घर में आपस में प्रेम नहीं है समझ लेना वह घर चाहे 4 Members का हो चाहे 10 का हो चाहे 2 का हो पर वह घर स्वर्ग नहीं बन सकता, वह तो नरक के समान होता है। आपस में प्रेम नारकी कर ही नहीं सकते। एक बिल में 1, 4, 6, 10 हजार, लाख, करोड़ों, अरबों, खरबों, असंख्यात् नारकी रहते हैं किन्तु किसी नारकी का किसी नारकी से प्रेम नहीं होता। **''न रता इति नारकाः''** जिधर रति भाव नहीं है वह नारकी कहलाते हैं।

दूसरी शर्त-दूसरी बुराई है **अविश्वास**। यदि यह बुराई आपके घर में है तो वह भी नरक के समान है। यदि आपस में दो भाई-भाई में विश्वास नहीं है, पति-पत्नी में विश्वास नहीं है, पिता-पुत्र में विश्वास नहीं है, माँ-बेटी में विश्वास नहीं है अन्य रिश्तों में विश्वास नहीं है तो वह घर नरक के समान है। विश्वास नहीं है तो समझो संसार में कुछ नहीं है। एक घर में रहने वाले दो भाई एक पलंग पर भी सो रहे हैं यदि विश्वास नहीं एक-दूसरे पर तो शत्रु हैं, दोनों में बहुत दूरियाँ हैं। हमें तन की नहीं मन की दूरियों को दूर करना है। यदि अपने घर में अविश्वास का जीवन आप जी रहे हैं तो निःसंदेह समझिये आपका जीवन स्वर्ग तुल्य नहीं हो सकता है।

अगली बात जो नारकीय जीवों में पायी जाती है **अन्यायिक छीना-झपटी**। अन्याय यदि आपके घर में चल रहा है तो समझो आपका घर भी नरक तुल्य है। नरक में कभी न्याय नहीं होता। कौन नारकी किस पर वार कर दे वहाँ कोई नियम नहीं होते। छोटे का विचार

नहीं होता कोई बड़ा नहीं होता है, वहाँ तो जो चल रहा है सो चल रहा है। जिस पर वार कर दिया सो कर दिया, कौन नारकी कब क्या कर दे, कुछ भी नहीं पता।

नरक में अगली बात **अभक्ष्य भक्षण**। नारकियों में एक बात होती है नारकियों का शरीर ही काट-काट कर नारकियों को खिला दिया जाता है। उनका शरीर वैक्रियक होता है। जिस घर में अभक्ष्य भक्षण किया जाता है ऐसा परिवार या ऐसे व्यक्ति आज नहीं तो कल नरक के द्वार को देखने को मजबूर हो जायेंगे।

एक जगह लिखा है कृष्ण लेश्या वाला (क्रूर परिणाम वाला) व्यक्ति नारकीय होता है, क्योंकि नारकीय की कषाय बहुत तेज होती है। वह इतना क्रूर परिणामी होता है कि क्षणभर भी उसे शांति नहीं, दिन रात मारकाट चलती रहती है। उसके जीवन में शांति का अभाव है, क्षमादि धर्म नहीं, कुछ भी नहीं। यदि आपके घर में भी कोई क्रूर परिणामी है और कषाय के आवेश में आगे-पीछे सोचना भूल जाये, जो हाथ में आये उसी को दे मारे समझो नारकी जैसा है, क्रोध में आपे के बाहर। अरे! क्रोध भी हो तो कम से कम बुद्धि तो रखे किन्तु मारे क्रोध के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है अरे! क्रोध में इतना हो सकता है कि ऊँची आवाज में बोल दिया या डाँट दिया, ये थोड़े ही है कि हाथ में जो कुछ पड़ गया तलवार आयी तो तलवार का वार, उठाई बंदूक और शूट कर दिया, ऐसा नहीं, यदि क्रोध में पूरा विवेक ही नष्ट हो गया तो तुममें और नारकी में क्या अंतर रहा।

एक और बात नारकी जीवों में होती है **तीव्र यातना**। यदि तुम किसी को तीव्र दुःख दे रहे हो या कोई तुम्हें तीव्र दुःख दे रहा है बुद्धिपूर्वक, तो समझ लेना तुम्हारा जीवन नारकीय तुल्य है, क्योंकि दयालु व्यक्ति कभी किसी को दुःख देता नहीं और दयालु व्यक्ति संक्लेशता के साथ तीव्र दुःख भोगता भी नहीं, वह दुखों को संतोष के साथ समता से भोगता है। कई बार तीव्र पाप का उदय आ जाता

है, कोई भी रोग आदि आ गया तब भी कषाय की तीव्रता नहीं रहती। यदि तुम किसी को बुद्धिपूर्वक दुःख दे रहे हो तड़पा-तड़पा करके मार रहे हो तो समझ लेना तुम्हारा जीवन नारकीय तुल्य है, तुम्हारे घर में नरक का वास है यदि समता रूप परिणामों से सहन कर रहे हो तो समझो तुम्हारे घर में स्वर्ग का वास है।

अगली बात है कड़वे शब्द, तीखे शब्द, कटुशब्द, निंदा के शब्द यदि तुम्हारे घर में भी कोई ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जैसे मैं तुझे काट दूँगा, चीर दूँगा, तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा, तू क्या समझता है, ऐसे शब्द यदि कोई बोलता है तो समझ लेना या तो वह नरक से निकल करके आया है या नरक में जाने की तैयारी कर रहा है, वर्तमान में उसका घर भी नरक के तुल्य है। जो किसी को समूल नष्ट करना चाहता है समझो वह भी नारकीय तुल्य है। जैन दर्शन में जमीकंद का त्याग कराया जाता है ऐसा क्यों? जमीकंद का त्याग करो, आलू का त्याग करो, गाजर-मूली का त्याग करो तब आप आहार दे सकते हो महाराज जी को। क्यों त्याग कराया जाता है? जमीकंद खाने वाला व्यक्ति दयालु नहीं कहलाता है, वह क्रूर परिणामी कहलाता है, नरकायु का बंध करने वाला होता है, आप पूछेंगे क्यों? क्योंकि गाजर, मूली जो भी आप खाओगे जड़ से उखाड़ोगे, जैन दर्शन कहता है कोई फल गिरा है उसको खाओ, चलो किसी ने तोड़कर भी खा लिया किंतु तुमने उसका पूरा पेड़ ही उखाड़ दिया, दूसरे का जीवन पूरा नष्ट करके तुम खाना चाहते हो। जमीकंद खाया तो माँस के बराबर है, अपने थोड़े स्वाद के लिए दूसरे का पूरा जीवन नष्ट करना यह कषाय की तीव्रता नहीं तो और क्या है।

जमीकंद का सेवन करने वाला व्यक्ति कहता है। वाह! क्या आलू का पराठा है, क्या गाजर का हलवा है, अरे चाय बिना अदरक के तो टेस्ट नहीं दे रही है, छोंक लगेगा तो प्याज का वरना सब बेकार, दूसरे के प्राण जा रहे हैं और तुम्हें आनंद आ रहा है। यदि दूसरे के प्राण

लेने में तुम्हें आनंद आ रहा है तो ये रौद्र ध्यान है और रौद्र ध्यान नरक का कारण है। यदि ऐसी प्रवृत्तियाँ तुम्हारे घर में होती हैं तो तुम्हारे घर में ये लक्षण नरक जैसे हैं, ये लक्षण पहले तुम्हें निकालने पड़ेंगे, स्वर्ग बनाने के पहले भूमिका तैयार करनी पड़ेगी, स्वर्ग की नींव तो बाद में रखी जायेगी। पहले जो नरक का खंडहर है, नरक का बिल है उसे तोड़कर के स्वर्ग बनाया जायेगा। कोई चाहे कि टूटे-फूटे मकान पर "फ्लेट बना दिया जाये तो बनेगा क्या? "फ्लेट पर "फ्लेट बनाते जा रहे हैं, कब बनेंगे जब नीचे से नींव मजबूत हो।

महानुभाव! **'दुराशया दुराशा'** अर्थात् किसी भी व्यक्ति की बातों का अन्य अर्थ निकालना, खोटा आशय, कोई बात किसी ने कही, कही तो अच्छे के लिए, अच्छी तरह से कही किन्तु सामने वाले को तो खोटा अर्थ निकालना है। जैसे जौंक गाय के स्तन पर चिपककर भी खून चूसती है, वहाँ दूध भी है किन्तु उसे दूध दिखता नहीं है वह तो खून चूसती है। ऐसे ही व्यक्ति को 100 अच्छाइयों में से भी यदि एक बुराई हो तो उसे वह एक बुराई दिखाई दे जायेगी, 100 अच्छाई न दिख पायेंगी। अच्छाईयाँ दिखाई नहीं देती। कोई भी गुलाब ऐसा नहीं जिनके साथ काँटा नहीं, हर व्यक्ति में कोई न कोई बुराई होती है किन्तु जिस व्यक्ति को बुराई ही बुराई दिखाई दें तो समझो वह दुर्गति का पात्र बनने जा रहा है। जिस व्यक्ति को अच्छाईयाँ दिखाई दें समझो सुगति का पात्र है। चीजें दोनों हैं गिलास में आधा ग्लास पानी है, जो कहे आधा ग्लास खाली है वह नकारात्मक सोच के साथ जी रहा है और जो कहता है आधा ग्लास भरा है वह समझो सकारात्मक सोच के साथ जी रहा है, एक को खाली दिखता है एक को पानी दिखता है।

जिस व्यक्ति को छोटे से छोटा दोष भी दिखाई देता है वह व्यक्ति दोषों का ग्राहक है, छिद्रान्वेषी है वह गुणज्ञ नहीं है, गुणग्राहक नहीं है, वह तो बुराईयों का पिटारा है उसके पास बुराईयों को ग्रहण करने की चुम्बक है। जहाँ बुराई होती है उसे खींच लेता है उसे अच्छाई

तो दिखती ही नहीं है, अच्छाई का चश्मा उतार कर बुराई का काला चश्मा लगा लिया इससे सफेद दीवार भी उसे काली दिखाई दे रही है। तो ये विशेषता प्राय:कर के उन लोगों में पायी जाती हैं जिनका जीवन, जिनका घर नरक तुल्य बना हुआ है।

महानुभाव! सबसे पहले घर को स्वर्ग बनाने के लिए इन सबका परिहार करना पड़ेगा। मैं समझता हूँ यद्यपि ये सब बुराईयाँ अपरिहार्य हैं आप लोगों के लिए किन्तु इनका परिहार भी अनिवार्य है, अपरिहार्य नहीं होती तो अभी तक आप ने कब की छोड़ दी होती किन्तु है तो परिहार के योग्य। पहले बुराई अलग करें, ऐसा नहीं है मुँह में नमक दबाये रखो और शक्कर का स्वाद लेना चाहो तो नहीं चलेगा, नमक को तो निकालकर बाहर करो अन्यथा वह शक्कर भी तुम्हें खारी लगेगी। यदि कोई भ्रमर गंदगी के ऊपर बैठकर के उसके कण को अपने मुँह में दबा ले और फिर फूलों पर बैठ जाये तो उसे फूलों से भी दुर्गंध आयेगी क्योंकि दुर्गंध फूलों से नहीं उसके अंदर जो गंदगी भरी है उससे आ रही है, हमारे भी घर के अंदर गंदगी भरी हुई है इसे निकालकर बाहर फेंकना है।

जो कपड़े रंगने वाले होते हैं वे पहले रंगाई करते हैं या वे पहले धुलाई करेंगे फिर रंगाई, दीपावली पर पहले घर की सफाई करेंगे फिर decoration करेंगे, मंदिर जी के शिखर पर यदि काई जम गई है और पेन्ट करना है तो क्या करोगे? सीधे पेन्ट नहीं करोगे। सफाई कर खरोंच-खरोंच कर काई हटाकर फिर पेन्ट करोगे। गंदगी को निकालना जरूरी है, किसान खेत में बीज बोता है उसके लिए पहले क्या करता है बुवाई के लिए पहले जुताई करता है वह भी 1-2 या 4-6 बार नहीं यदि गेहूँ बोने हैं तो बीस बार, यदि गेहूँ के लिए 20 बार जोत दिया और 6 बार पानी दिया तो फिर 15-20 क्विंटल गेहूँ होगा और यदि ऐसे ही डाल दिया तो बीज भी वापिस लौटकर नहीं आयेगा तो जुताई भी बहुत आवश्यक है।

महानुभाव! पहली एक बात है कि हम स्वर्ग को अपना घर कैसे बनायें और दूसरी बात अपने घर को स्वर्ग कैसे बनायें? क्या चाहते हैं? यदि स्वर्ग को अपना घर बनाना चाहते हैं तो शरीर को छोड़ करके जाना पड़ेगा, देव बनकर के उसको अपना घर बनाना पड़ेगा, जीते जी तो इस शरीर से स्वर्ग को अपना घर नहीं बना सकते किन्तु यदि अपने घर को स्वर्ग बनाना है तो प्रेम से, संयमपूर्वक, मिलजुल कर रहें। जो जीते जी अपने घर को स्वर्ग बना लेता है उसे नियम से स्वर्ग अपना घर जैसा मिल जाता है किन्तु जिसने जीते जी अपने घर को नरक जैसा बनाया है उसे आगे चलकर नरक ही मिलेगा। जो जैसे वातावरण में रहता है उसे वैसा वातावरण मिलता है। भगवान् आदिनाथ स्वामी सर्वार्थसिद्धि से मध्यलोक में चयकर आये तो इंद्र ने यहाँ पर भी उनकी व्यवस्था वैसी ही उत्तम की, उनका महल भी ऐसा बना दिया, रत्नों के विमान जैसा और समस्त वस्त्राभूषण भी स्वर्ग से आते थे और जो यहाँ पर भी नारकी जैसा बनकर रह रहा है आज नहीं तो कल उस अवस्था को प्राप्त हो जायेगा।

महानुभाव! यद्यपि कोई जीव मरना नहीं चाहता सिवाय नारकी के, नारकी मरना चाहते हैं इसीलिए तीन पुण्यायु हैं देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु केवल नरकायु ही पाप प्रकृति है। गति की अपेक्षा से देवगति, मनुष्य गति पुण्य प्रकृति है और तिर्यंच गति, नरक गति पाप प्रकृति है। आयु की अपेक्षा से तिर्यंचायु को पाप प्रकृति नहीं लिखा। महानुभाव! अब स्वर्ग को अपना घर बनाने की बात छोड़ दो, क्योंकि अभी तो कोई तैयार नहीं, महाराज जी अभी तो घर को स्वर्ग कर लेंगे जब घर स्वर्ग बन जायेगा तब तो स्वर्ग की भी कामना नहीं, कामना नहीं है फिर भी मिलेगा। क्या करें घर को स्वर्ग बनाने के लिए इसके उल्टे चलें। पहली बात आपस में **प्रेमभाव, प्रीति** जहाँ पर आपस में प्रीति है निःसंदेह उस घर में स्वर्ग जैसा आनंद आता है। चाहे घर में गरीबी हो, घर में चार भाई हों एक थाली में बैठकर भोजन कर लें ज्यादा

हुआ तो माँ भी उसी में साथ बैठ गयी पाँचों बड़े ही प्रेम से भोजन कर रहे हैं, किन्तु देखो आज चार भाई हैं तो चारों की अलग-अलग कोठी है वे चारों भाई एक साथ बैठकर भोजन नहीं कर सकते, माँ के साथ भोजन किये तो मुद्दतें बीत गईं, माँ बेचारी तरस रही है। कभी एक थाली में भोजन कर रहे थे केवल सूखी रोटी रखी थी चटनी रखी थी, उसमें चारों को आनंद आ रहा था, अच्छा लग रहा था स्वर्ग के देवों के जैसे कंठ से अमृत झरता है वैसे ही उनके कंठ से अमृत झर रहा था किन्तु आज अच्छे से अच्छे पकवान सबके सामने हैं किन्तु उसमें भी आनंद नहीं आ रहा कोई स्वाद नहीं है रस नहीं है।

आनंद वस्तु में नहीं अपने कंठ में है और कंठ में से आनन्द तब झरता है जब भावना अच्छी होती है Glands में से hormones स्रवित होते हैं वह भावनाओं के बल से स्रवित होते हैं भावना जैसी होती है वैसे Hormones स्रवित होते हैं आपकी ग्रंथियों से। भावना दूषित हो तो भोजन भी दूषित हो जाता है। आनंद तो वे गरीब ले रहे हैं जो भोजन कर रहे हैं एक ही थाली में बैठकर, थाली छोड़ो पत्तों की पत्तल बना करके खा रहे हैं, पत्तल भी छोड़ो यदि एक के हाथ में रख दिया उसी में सब खा रहे हैं और पानी भी एक कुल्हड़ में सब पी रहे हैं झूठे का कोई विकल्प ही नहीं। क्या प्रेमभाव है बेटा मिठाई खा रहा है पापा के मुँह में दे दी क्या आनंद आ रहा है उसमें भी। आज यदि तुम्हारे लिए स्पेशल खाने को मिठाई आ जाये तो उसमें भी कोई आनंद नहीं। आनंद किसमें है? प्यार में, स्वर्ग में ये प्रेम है, यदि तुम्हारे घर में प्रेम की, प्रीति की स्थापना हो जाये तो समझो तुम्हारे घर में स्वर्ग की एक ईंट लग गई है।

दूसरी स्थिति है भीति अर्थात् पापों से भय। जिस घर में पापों से भीति होती है पापों से डर होता है वहाँ भूलकर के भी कोई पाप नहीं करता, समझो वहाँ स्वर्ग की ईंट लग गई। एक बार को बाप से मत डरो पर पाप से डरो। बाप तो क्षमा कर देगा किन्तु पाप कभी भी

क्षमा नहीं करेगा। बाप तुम्हें फिर भी अपना लेगा, तुम उसकी अविनय करोगे तब भी तुम्हें अपनी सम्पत्ति दे देगा किन्तु पाप अपना बुरा फल दिये बिना नहीं जायेगा वो कहेगा बेटा तूने जैसा किया अब वैसा भोगो

दगा किसी का सगा नहीं है, नहीं मानो तो कर देखो।
जिस-जिस ने भी दगा दिया है, उसके जाके घर देखो॥

ये दगा पाप कभी किसी का सगा नहीं होता, महानुभाव! व्यक्ति एक बार अभिशाप से मुक्त हो सकता है वैदिक परम्परा में एक उदाहरण आता है कि अहिल्या को अभिशाप लगा हुआ था, रामचन्द्र जी की पद की धूलि से वह शिला से सुन्दर नारी बन गई, और भी कई उदाहरण हैं जो अभिशाप से मुक्त हुए किन्तु पाप से मुक्त होना बड़ा कठिन है, पाप भोगना पड़ता है, चाहे तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी भी बन गये तब भी 13 महीने 8 दिन तक आहार नहीं मिला, तीव्र अंतराय कर्म का उदय आया, अंतराय कर्म क्या है पाप कर्म ही तो है। पार्श्वनाथ स्वामी तीर्थंकर बन गये तीन कल्याणक भी हो गये गर्भ, जन्म, तप बस केवलज्ञान होने वाला था तब भी उनके ऊपर ओले-शोले पत्थर पानी, अग्नि की वर्षा, पानी की वर्षा संवर देव द्वारा की गई ये कर्म किसी को नहीं छोड़ते। चक्रवर्ती का भी मान भंग हो गया, तीर्थंकरों पर भी उपसर्ग आये, सुपार्श्वनाथ स्वामी पर उपसर्ग हुआ, महावीर स्वामी पर भी उपसर्ग आया, पाण्डवों पर उपसर्ग आया, कर्मों ने किसी को नहीं छोड़ा। रामचन्द जी जैसे बलभद्र को राज त्यागकर जंगल में जाना पड़ा। महानुभाव! जहाँ पापों से भीति होती है वहाँ निःसंदेह स्वर्ग की स्थापना होती है।

तीसरी बात है **रीति**। रीति का आशय क्या है? law & order, administration अनुशासन। बड़े व्यक्ति छोटों को प्यार और वात्सल्य दें ये रीति है छोटे व्यक्ति बड़ों का आदर करें सत्कार करें, विनय का ध्यान रखें ये रीति है जो एक पूर्व परम्परा चली आ रही है, जो सिस्टम पहले से चला आ रहा है उसके बाहर नहीं जाना, उसके बाहर गये तो

समझो बस स्वर्ग से बाहर चले गये। रीति-रिवाज सबके होते हैं आप कहते हैं हमारी भारतीय रीति ऐसी है। अच्छी रीतियाँ ही रीति-रिवाज कहलाते हैं। आज तो बुरी रीति को भी रीति कहने लगे हैं। किन्तु रीति का अर्थ होता है अच्छी परम्परा, जो अच्छे कार्यों की परम्परा बनी है वह भारतीय संस्कृति में रीति कहलाती है। महानुभाव! यहाँ पर अच्छी रीतियों का परिपालन किया जाता है जैसे महाराणा प्रताप ने वन में जाकर के घास की रोटी तो खा ली पर माँस की बोटी नहीं खाई, तो ये वंशों के रीति-रिवाज रहे, माँस नहीं खा सकते। रामजी ने जंगल में रहना स्वीकार कर लिया किन्तु पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया ये रीति है-

रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जायें पर वचन न जाई।

पाण्डव आदि जुए में हार गये तो वनवास को स्वीकार किया किन्तु वहाँ युद्ध नहीं किया कि हमें हमारा राज्य चाहिए। तो रीति क्या है रीति का अर्थ होता है अच्छे-अच्छे कार्यों की परम्परा। अगली चौथी बात है-**आत्म प्रतीति।** जिसमें अपनी आत्मा की प्रतीति है वहाँ स्वर्ग है। जो व्यक्ति नरक में जाने वाले हैं वह अपनी आत्मा को भूल करके सब कुछ परिग्रह इकट्ठा कर सकता है किन्तु आत्मा को भूल जाता है जब आत्मा को ही भूल गये तो बचा ही क्या। किन्तु यहाँ पर क्या कहा घर को स्वर्ग बनाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को आत्म प्रतीति हो। रामचन्द्र जी के भाई भरत जब रामचन्द्र जी को वन से लौटाकर नहीं ला पाए तो रामचन्द्र जी की खड़ाऊँ को सिंहासन पर विराजमान करके स्वयं संन्यास लेकर के साधना में संलग्न रहे, साधु नहीं बने पर संन्यासी जैसा जीवन जिया, आत्मा की प्रतीति घर में रहकर भी की जैसे जल में कमल। जैसे सोना यदि कीचड़ में पड़ा है तो सोना-सोना ही है लोहा नही हो जायेगा। ऐसे आत्मा की प्रतीति की भरत चक्रवर्ती ने, 6 खण्ड के राज्य का संचालन किया फिर भी ऐसे रहे जैसे जल में कमल।

मुनि नहीं बन सकते तो मुनीम बनो। मुनीम कैसे रहता है सेठ को व्यापार में चाहे घाटा लगे, चाहे मुनाफा हो मुनीम जानता है मुझे तो 10 हजार रूपये मिलने हैं, दस करोड़ का लाभ भी हो जाये तो सैलरी तो 10 हजार ही देंगे। जैसे मुनीम को उसके व्यापार में आसक्ति नहीं है चाहे दिन में लाखों रुपये इधर-उधर करता रहे। ऐसे ही जिसे आत्मा की प्रतीति होती है वह पर वस्तुओं में आसक्त नहीं होता।

महानुभाव! अगली बात है **धर्मानुष्ठान में उत्साह**। जिस घर-परिवार में धर्म के प्रति उत्साह रहता है यदि कोई धर्म का कार्य है और सभी घर के लोग उत्साहित हैं, प्रात:काल से सभी तैयार होकर पूजा-पाठ करने बैठ गये, सभी स्वाध्याय कर रहे हैं, जिस घर में ऐसा माहौल बना हुआ है वह स्वर्ग जैसा है। चाहे झोपड़ी ही क्यों न हो, फिर भी स्वर्ग है अर्थात् धर्म के अनुष्ठान में उत्साह होना चाहिए। जिस परिवार में धर्म के कार्यों के प्रति उत्साह रहता है नि:संदेह उस परिवार में स्वर्ग जैसा आनंद आता है। कभी भी नगर में त्यागी व्रती आयें तो उत्साह में भरकर कहो माँ चौका लगा लो, रथयात्रा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा किसी भी कार्य में उत्साह होना चाहिये। आज अनुकूलता है, कोई अंगोपांग हीन नहीं है, उत्तम पात्र बनकर पूजा कर सकते हो, भगवान् न करे कोई दुर्घटना घट गई तो रखी रहेगी यह करोड़ों की सम्पत्ति किन्तु प्रतिष्ठाचार्य तुम्हें पात्र न बनायेंगे। सौधर्म इन्द्र या कोई पात्र न बन पाओगे वहाँ सबके साथ पूजा न कर सकोगे। महानुभाव! उत्साह होना चाहिए क्योंकि न कल का भरोसा है न पल का भरोसा।

अगला है **शक्ति का सदुपयोग।** स्वर्ग के देव शक्ति का सदुपयोग करते हैं नारकी जीवों का शरीर भी वैक्रियक है पर वे उसका दुरुपयोग करते हैं। स्वर्ग के देव अपनी शक्ति का सदुपयोग करने के लिए मूल शरीर को छोड़कर उत्तर शरीर से यहाँ आते हैं धर्मात्माओं की रक्षा के लिए। आप भी अपनी शक्ति का सदुपयोग चाहे तन की शक्ति हो, वचन की हो, धन की हो उसका सदुपयोग करना प्रारम्भ कर देना नि:संदेह घर में ही स्वर्ग की स्थापना हो सकती है।

अगली बात है-**वचनों की मधुरता।** जिस परिवार में मीठे-मीठे वचन बोले जाते हैं उस व्यक्ति की गाली भी अच्छी लगती है, उसका डाँटना भी अच्छा लगता है और इसके विपरीत यदि कोई अपनी लाल-लाल सी आँखें दिखाते हुए भोजन करने के लिए भी कहे तो पहले तो इच्छा ही ना होगी। घर में माँ, पत्नी, भाभी कोई भी गुस्से में होकर भोजन परोसे तो तुम्हें भूख भी होगी तब भी कह दोगे ''आप ही खालो मुझे नहीं खाना,'' और कहीं कोई कहता है आइये, स्वागत है। यदि मीठे शब्द बोले फिर चाहे वह कैसा ही भोजन कराये तो आप कहोगे भईया ठीक है यही खा लेता हूँ। कोई चिल्लाकर पड़े, कटु शब्द बोले तो वहाँ स्वर्ग कैसे आ पायेगा, यदि तुम्हारे पास गुड़ खिलाने के लिए नहीं है तो ना सही किन्तु गुड़ जैसी मीठी बात तो कह दो, वचनों की मधुरता घर में स्वर्ग की स्थापना कर सकती है।

महानुभाव! अगली बात है **गुणानुराग।** अनुराग व्यक्ति के प्रति नहीं, अनुराग व्यक्ति के गुणों के प्रति हो। गुण सर्वदा, सार्वभौमिक पूज्यनीय, सम्मानीय, अभिवंदनीय होते हैं। ऐसा कोई काल नहीं जहाँ गुणों की पूजा न हो, ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ गुणों की पूजा न हो। ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो गुण-दोष की पहचान न जानता हो। यदि हमारा गुणानुराग है तो हम बुराईयों में से भी गुण खोज सकते हैं, बुराईयों में से भी अच्छाईयाँ खोजी जा सकती हैं।

श्री कृष्ण एक दिन पाण्डवों के साथ वनविहार के लिए गये। मार्ग में एक कुत्ता पड़ा हुआ था, पाण्डव नाक ढककर के आगे दौड़ने लगे, श्री कृष्ण ने नाक बंद नहीं की, थोड़ा देखकर के आगे बढ़े और कहने लगे वाह इस कुत्ते के दाँत कितने अच्छे हैं। एक सड़े हुए कुत्ते में भी अच्छाई खोज निकाली, इसे कहते हैं बुराई में से अच्छाई खोजने की कला।

महानुभाव! ये अच्छाई खोजने की कला जिसके पास है ऐसा व्यक्ति अपने घर को स्वर्ग बनाने में समर्थ हो सकता है और स्वर्ग

को सभी चाहते हैं क्योंकि संसार की सबसे अच्छी चीजें क्या मानी जाती हैं? सिर्फ दो चीज एक स्वर्ग और एक अपना स्वर्ग से सुंदर, सपनों से प्यारा यानि सपना। क्योंकि स्वर्ग में दुःख का नामनिशान नहीं है वहाँ तो सिर्फ पुण्य का फल भोगना है और पुण्य का फल भोगने में क्या कष्ट और सपना देखने में भी शरीर पर कोई जोर नहीं पड़ता आँख बंद कर लेते हैं, विश्राम कर रहे हैं और सपना देख रहे हैं, इन दोनों कार्यों में कहीं पर पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। स्वर्ग में भी कोई पुरुषार्थ नहीं है। सब कुछ अचानक है, यहाँ तक कि पानी का गिलास भी उठाकर नहीं पीना है भोजन भी नहीं करना है, जब इच्छा हुई तभी झट से कंठ से अमृत झर जाता है। श्वाँस भी जल्दी-जल्दी नहीं लेना है। स्वर्ग किसे पसंद नहीं होता है तो स्वर्ग और सपना दोनों अच्छे माने जाते हैं किन्तु **''स्वर्ग से सुन्दर सपनों से प्यारा है अपना घर द्वार''** अपना घर द्वार यदि स्वर्ग जैसा बन जाये तो वह स्वर्ग से भी अच्छा और सपनों से भी प्यारा हो सकता है और अपने घर से प्यारा मैं समझता हूँ संसार में और कुछ है ही नहीं। 'East or west home is the best' चाहे कहीं भी घूम आना चाहे कहीं भी चले जाना लौटकर के तो अपने ही बिल में घुसना पड़ेगा। किसी कविता की पंक्ति है-

पूरब से पश्चिम में आये, पश्चिम से पूरब में आये।
उत्तर से दक्षिण में आये, दक्षिण से उत्तर में आये।
लौटकर वे घर को आये, आकर माँ को वचन सुनाये।
देख लिया हमने जग सारा, अपना घर है सबसे प्यारा॥

महानुभाव! चाहे कहीं भी भटक लेना, जगत में भटकना होता है और अपने घर में रहना होता है। किसी दूसरे के घर पर चाहे ससुराल में चले जाना 2-4 दिन तो खातिरदारी होगी और 5वें दिन कहेंगे जीजाजी क्या बात है कोई काम नहीं है क्या? तुम तो यहाँ अड़कर के ही बैठ गये।

एक दिन के पाहुने दो दिन के पई।
और तीन दिन रहे तो बेशरम सही।

अरे! अब तो 2-3 घंटे के लिए जाओ, तो ही सही। पुराने जमाने में तो दो-तीन दिन रुक जाते थे और अब कोई रुक जाये तो कह ही देंगे ससुराल वाले-घर में कोई काम नहीं है क्या? एक मेहमान ऐसे ही ससुराल में जाकर अड़ गये, जाने का नाम ही न लें, उनकी साले की पत्नी सरेज वह सुबह चाय बनाने बैठी चूल्हे पर, लकड़ी सुलगाने के लिए माचिस जलाई और गाती जा रही थी-

चूल्हा मेरा रंग बिरंगा छह महीने में सुलगेगा।

और नंदोई बैठा है बाजू में, उसको सुना-सुना कर कह रही है, नंदोई ने एक बार, दो बार, चार बार सुना उससे रहा नहीं गया तो वह कहता है-

मेहमान मन का मौजी है वर्ष दिना में टिरकेगा।

महानुभाव! कहने का आशय यह है कि चाहे कहीं भी चले जाना चार दिन की चादँनी फिर अंधेरी रात। दो दिन तो खातिर अच्छी होगी तीसरे दिन टरका दिया जायेगा इसीलिए अपना घर सबसे प्यारा है अतः अपना घर स्वर्ग बनाना है, आपको ही बनाना है, जिससे स्वर्ग जैसा सुख आप भी प्राप्त कर सकें। आज बस इतना ही।

''जैनम् जयतु शासनम्'